

चली जायगी। जाड़े के दिन झाड़ू-बहारू, नहाने-घोने और खाने पीने में कट गए। मगर जब सन्ध्या-समय फिर जियावन का जी भारी हो गया तो सुखिया घबरा उठी। तुरत मन में शक्का उत्पन्न हुई कि पूजा में विलम्ब करने से ही बालक फिर सुरमा गया है। अभी थोड़ा-सा दिन बाकी था। बच्चे को लेटाकर वह पूजा का सामान करने लगी। फूल तो जर्मींदार के बगीचे में मिल गए। तुलसी दल द्वार ही पर था, पर ठाकुरजी के भोग के लिए कुछ मिष्ठान्न तो चाहिए, नहीं तो गाँववालों को बाँटेगी क्या? चढाने के लिए कम से कम एक आना तो चाहिए ही। सारा गाँव छान आई, कहीं पैसे उधार न मिले। तब वह हताश हो गई। हाय रे अदिन, कोई चार आने पैसे भी नहीं देता। आखिर अपने हाथों के चाँदी के कडे उतारे और दौड़ी हुई बनिफ की दुकान पर गई, कडे गिरो रखे, बत्तासे लिए और दौड़ी हुई घर आई। पूजा का सामान तैयार हो गया तो उसने बालक को गोद में उठाया और दूसरे हाथ में पूजा की थाली लिए मन्दिर की ओर चली।

मन्दिर में आरती का घण्टा बज रहा था। दस पाँच भक्त जन खड़े स्तुति कर रहे थे। इतने में सुखिया जाकर मन्दिर के सामने खड़ी हो गई।

पुजारी ने पूछा—क्या है रे? क्या करने आई है?

सुखिया चवतरे पर आकर बोली—ठाकुरजी की मनीनी की यी महाराज, पूजा करने आई हूँ।

पुजारीजी दिन भर जर्मींदार के असामियों की पूजा किया करते थे, और शाम सवेरे ठाकुरजी की। रात को मन्दिर ही में सोते थे, मन्दिर ही में आपका भोजन भी बनना था, जिससे ठाकुरद्वारे की सारी अन्नकारी काली पड गई थी। स्वभाव के बडे दयालु थे, नेहवावान ऐसे कि

चाहे कितनी ही ठण्ड पड़े, कितनी ही ठण्डी हवा चले बिना स्नान किए मुट में पानी न डालते थे। अगर इस पर उनके हाथों और पैरों में मैल की मोटी तह जमी हुई थी तो इसमें इनका कोई दोष न था। बोले—तो क्या भीतर चली आवेगी? हो तो चुकी पूजा। यहाँ भाकर भरभट्ट करेगी?

एक भक्तजन ने कहा—ठाकुरजी को पवित्र करने आई है।

सुखिया ने बड़ी दीनता से कहा—ठाकुरजी के चरण छूने आई हूँ सरकार! पूजा की सब सामग्री लाई हूँ।

पुजारी—कैसी घेसमझी की बात करती है रे, कुछ पगली तो नहीं हो गई?। भला तू ठाकुरजी को कैसे छुएगी?

सुखिया को अब तक कभी ठाकुरद्वारे में आने का अवसर न मिला था। आश्चर्य से बोली—सरकार वह तो मंसार के मालिक है। उनके दरसन से तो पापी भी तर जाता है, मेरे छूने में उन्हें कैसे छूत्र लग जायगी?

पुजारी—अरे, तू चमारिन है कि नहीं रे?

सुखिया—तो क्या भगवान ने चमारों को नहीं सिरजा है? चमारों का भगवान कोई और है? इस बच्चे की मनीती है सरकार।

एस पर एसी भक्त महोदय ने, जो अब स्तुति समाप्त कर चुके थे, एपट कर बोले—तार के भगा दो खुडैल को। भरभट्ट करने आई है फेंक दो धाली धाली। सवार में तो घाप ही घाग लगी हुई है, चमार भी ठाकुरजी की पूजा करने लगेंगे तो पिरघी रहेगी कि रसातल को चले जायगी?

दुमरे भक्त महोदय बोले—अब देवारे ठाकुरजी की भी चमारों के घाप का भोजन करना पड़ेगा। अब परलय होने में कुछ कसर नहीं है।

ठण्ड पड रही थी, सुखिया खड़ी काँप रही थी और यहाँ धर्म के ठेकेदार लोग समय की गति पर आशोचनाएँ कर रहे थे। बच्चा मारे ठण्ड के वसकी छाती में घुसा जाता था, किन्तु सुखिया वहाँ से हटने का नाम नलेती थी। ऐसा माहूम होता था कि उसके दोनों पाँव भूमि में गड गए हैं। रह-रहकर उसके हृदय में ऐसा उद्गार उठता था कि जाकर ठाकुरजी के चरणों पर गिर पडे। ठाकुरजी क्या इन्हीं के हैं, हम गरीबों का उनसे कोई नाता नहीं है, ये लोग कौन होने हैं रोकनेवाले, पर यह भय होता था कि इन लोगों ने कहीं सचमुच थाली-वाली फेंक दी तो क्या करूँगी! दिल में एँठ कर रट जाती थी। सहसा उसे एक बात सूझी। वह वहाँ से कुछ दूर जाकर एक वृक्ष के नीचे अन्धेरे में छिपकर इन भक्तजनों के जाने की राह देखने लगी।

(५)

आरती और स्तुति के पश्चात् भक्तजन बड़ी देर तक गीमदभागवत का पाठ करते रहे। उधर पुजारीजी ने जूल्हा जलाया और गाना पकाने लगे। जूल्हे के सामने बैठे हुए 'हूँ हूँ' करते जाते थे और बीच बीच में टिप्पणियाँ भी करते जाते थे। दस बजे रात तक क्या वात्ता होती रही और सुखिया वृक्ष के नीचे ध्यानावस्था में खड़ी रही।

वारे भक्त लोगों ने एक एक करके घर की राह ली। पुजारीजी अफेले रह गए। तब सुखिया आकर मन्दिर के वरामदे के सामने खड़ी हो गईं जहाँ पुजारीजी आसन जमाए बटलौंड का क्षुधावर्द्धक मधुर मद्धीत सुनने में मग्न थे। पुजारीजी ने आइट पाकर गरदन उठाई तो सुखिया खो खड़ी देखा। चिढ़कर बोले—क्यों रे तू अभी यहीं खड़ी है ?

सुखिया ने थाली जमीन पर रख दी और एक हाथ फैला कर मिशान-प्रार्थना करती हुई बोली—महराजजी, मैं बड़ी अभागिनी हूँ। यही

बालक मेरे जीवन का भलम है मुझ पर दया करो। तीन दिन से इसने गिर नहीं ठठाया। तुम्हें बहा जस होगा महाराजजी !

उह कहते कइते सुबिया रोने लगी। पुजारीजी दयालु तो थे, पर चमारिन को ठाकुरजी के समीप जाने देने का अश्रुतपूर्व, घोर पातक वह कैसे कर सकते ? न-जाने ठाकुरजी इसका क्या दण्ड दें। आखिर उनके भी तो चार-बच्चे थे। उहीं ठाकुरजी क्रुपित होकर गाँव का सर्वनाश कर दें, तो बोले—घर जाकर भगवान का नाम ले, तेरा बालक अच्छा हो जायगा। मैं यह गुलामी-दल देना हूँ, बच्चे को खिला दे, चरणामृत उसकी गण्डों में लगा दे। भगवान चाहेंगे तो सब अच्छा ही होगा।

‘सुनो रस—ठाकुरजी के चरणों पर गिरने न दोगे महाराजजी ? बड़ी दुबिया हूँ, उधार काढकर पूजा की सामग्री जुटाई है। मैंने कल सपना देखा था महाराज कि ठाकुरजी की पूजा कर, तेरा बालक अच्छा हो जायगा। तभी दौड़ी आई हूँ। मेरे पास रुपया है। वह मुझसे ले लो, पर मुझे एक छग भर ठाकुरजी के चरणों पर गिर लेने दो।

एत प्रलम्भन ने पण्डितजी को एक क्षण के लिए विचलित कर दिया, किन्तु सूर्यता के कारण ईश्वर का भय उनके मन में कुछ कुछ बाकी था। संभल कर बोले—अरी पगली, ठाकुरजी नक्तों के मन का भाव देखते हैं कि दर दर गिरना देखते हैं। सुना नहीं है—‘मन चढ़ा तो बढौत में गढ़ा’। मन में भक्ति न हो तो लाख बोई भगवान के चरणों पर गिरे मर न होगा। मेरे पास एक जन्तर है। दाम तो उसका बहुत है, पर तुम, पगली रुपये में दे दूँगा। इसे बच्चे के गले में बांध देना। धम, कल दवा खेतने लगेगा।

सुबिया—तो ठाकुरजी की पूजा न करने दोगे ?

पुजारी—तेरे लिए इतनी ही पूजा बहुत है। जो दान कभी नहीं

हुई वह आज मैं कर दूँ और गाँव पर कोई आफन-बिपत पड़े तो क्या हो, इसे भी तो मोच ! तू यह जन्तर ले जा, भगवान चाहेंगे तो रात ही भर में बच्चे का क्लेश कट जायगा । किसी की डीठ पड गई है । है भी तो चोंचाल । मालूम होता उत्तरी वंश है ।

सुखिया—जब से इसे जर आया है, मेरे प्राण नहीं में समाप्त हुए हैं ।

पुजारी—बडा होनहार बालक है । भगवान जिळा दें, तेरे मार सड्डट हर लेगा । यहाँ तो बहुत खेलने आया करता था । इधर दो तीन दिन से नहीं देखा था ।

सुखिया—तो जन्तर को कैसे बाँडूंगी महाराज ?

पुजारी—मैं कपडे में बाँध कर देता हूँ, बस गले में पहना देना । अब तू इस बेला नवीन बसतर कहाँ खोजने जायगी ।

सुखिया ने दो रूप पर कडे गिरों रखे थे । एक पहले ही भँज चुका था । दूसरा पुजारीजी की भेंट किया और जन्तर लेकर मन को सनझाता हुई घर लौट आई ।

(५)

सुखिया ने घर पहुँच कर बालक के गले में यन्त्र बाँध दिया, पर ज्यों रात गुजरती थी उसका ज्वर भी बढता जाता था, यहाँ तक कि बजते-बजते उसके हाथ पाँव शीतल हाने लगे । तब तो बड घबडा और मोचने लगी । हाय ! मैं व्यर्थ ही मद्धोच में पडी रही और

टाकुरजी के दर्शन किए चली आई । अगर मैं अन्दर चली जाती और भगवान के चरणों पर गिर पडती तो कोई मेरा क्या कर लेता ? यही न होना, लोग मुझे धक्के देकर निकाल देने, शायद मारते भा, पर मेरा मनोरथ तो पूरा हो जाता । यदि मैं टाकुरजी के चरणों को अपने

आँसुओं से भिगी देती और बच्चे को उनके चरणों में सुला देती तो क्या उन्हें दया न आती ? वह तो दयामय भगवान हैं, दीनों की रक्षा करते हैं, क्या मुझ पर दया न करते ? यह सोचकर सुखिया का मन अधीर हो उठा । नहीं, अब विलम्ब करने का समय न था । वह घबराहट जायगी और ठाकुरजी के चरणों पर गिरकर रोएगी । उस अबला के भाशङ्कित हृदय को अब इसके सिवा और कोई अबलम्ब, कोई आश्रय न था । मन्दिर के द्वार बन्द होंगे तो वह ताले को तोड़ डालेगी । ठाकुरजी क्या किसी के हाथों विक गए हैं कि कोई उन्हें बन्द कर रखे ।

रात के तीन बज गए थे । सुखिया ने बालक को कमल से ढाँप कर गोद में बठाया, एक हाथ में थाली बठाई और मन्दिर की ओर चली । घर से बाहर निकलते ही शीतल वायु के भोंकों से ठमका कलेजा काँपने लगा । शीत से पाँव शिथिल हुए जाते थे । उस पर चारों ओर अन्धकार छाया हुआ था । रास्ता हो फरलाँग से कम न था । पगडण्डी बूझों के नीचे-नीचे गई थी । कुछ दूर दाहनी ओर एक पोखरा था, कुछ दूर बाँस की कोठियाँ । पोखरे में एक घोड़ी मर गया था और बाँस की कोठियों में सुडैलों का अड्डा था । बाईं ओर हरे भरे खेत थे । चारों ओर सन-सन हो रहा था, अन्धकार साँव साँव कर रहा था । सहसा गीदड़ों ने बर्कश स्वर से हुँआ हुँआ करना शुरू किया । हाय ! अगर कोई उसे एक लाख रुपये देता तो भी इस समय वह यहाँ न आती, पर बालक की ममता सारी शक्ताओं को दबाए हुए थी । "हे भगवान ! अब तुम्हारा ही आसरा है ।" यही जपती हुई वह मन्दिर की ओर चली जा रही थी ।

मन्दिर के द्वार पर पहुँच कर सुखिया ने जल्दी टटोल कर देखा । ताला पटा हुआ था । पुजारीजी परानदे से मिली हुई कोठरी में किदाट

बन्द किए मो रहे थे। चारों ओर अन्धेरा छाया हुआ था। सुविद्या चबूतरे के नीचे से एक ईंट उठा लाई और ज़ोर-ज़ार से ताले पर पटकने लगी। उसके शायों में न-जाने इतनी शक्ति कहाँ से आ गई थी। दो ही तीन चोटों में ताला और ईंट दोनों टूट कर चौखट पर गिर पड़े। सुविद्या ने द्वार खोल दिया और अन्दर जाना ही चाहती थी कि पुजारी क्रिवाड खोल कर हडबडाए हुए बाहर निकल आए, नीर 'चोर ! चोर !' का गुरु मचाते गाँव की ओर दौड़े। जादों में प्रातः पहर रात रहे ही लोगों की नोट खुल जानी है। यह शोर सुनते ही कई आदमी इधर-उधर से लालटेन लिए हुए निकल पड़े और पूछने लगे—कहाँ है, कहाँ ! क्रिघर गया ?

पुजारी—मन्दिर का द्वार खुला पड़ा है। मैंने खट-पट की आवाज सुनी।

सहसा सुविद्या धरामदे से निकलकर चबूतरे पर आई और बोली—चोर नहीं है, मैं हूँ, ठाकुरजी की प्रजा करने आई थी। अभी तो अन्दर गई भी नहीं। मार हटवा मच दिया।

पुजारी ने कहा—अब अन्धेरा हो गया। सुविद्या मन्दिर में जाकर ठाकुरजी को भ्रष्ट कर आई।

फिर क्या था, कई आदमी भरुआए हुए लपके और सुविद्या पर लौ और बर्तनों की मार पटने लगी। सुविद्या एक हाथ से बच्चे को डे हूए थी और दूसरे हाथ से उसकी रक्षा कर रही थी। पण एक क बलिष्ठ ठाकुर ने हमे इतनी ज़ोर से घेरा दिया कि बालक उसके हाथ से छूट कर ज़मीन पर गिर पड़ा। मगर न दूरा गया, न बोला, न माँव ली। सुविद्या भी गिर पड़ी थी। मैं-जकर बच्चे को उठाव नहीं तो उसके सुन्य पर नज़र पड़ी। ऐसा जान पड़ा मानो पानी में

परछाईं हो। उसके मुँह से एक चीख निकल गई। बच्चे का माथा टूटकर देखा। सारी देह ठण्डी हो गई थी। एक लम्बी साँस खींच कर वह उठ खड़ी हुई। उसकी आँखों में आँसू न आए। उसका मुख क्रोध की ज्वाला से तमतमा उठा, आँखों से अङ्गारे बरसने लगे। दोनों मुट्टियाँ बँध गईं। दाँत पीसकर बोली—पापियो, मेरे बच्चे के प्राण लेकर अब दूर क्यों खड़े हो ? मुझे भी क्यों नहीं उसी के साथ मार डालते ? मेरे छू लेने से ठाकुरजी को छूत लग गई। पारस को छूकर लोहा सोना हो जाता है, पारस लोहा नहीं हो जाता। मेरे छूने से ठाकुरजी अपवित्र हो जायेंगे ! मुझे बनाया तो छूत नहीं लगी ? तो, अब कभी ठाकुरजी को छूने नहीं आऊँगी। ताले में बन्द करके रखो, पहरा बैठा दो। हाय ! तुम्हें दया छू भी नहीं गई ! तुम इतने बठोर हो ! बाल-बच्चेवाले होंकर भी तुम्हें एक अभागिनी माता पर दया न आई ? तिम पर धरम के ठेकेदार बनते हो। तुम सब-के-सब हत्यारे हो, निपट हत्यारे हो। डरो मत, मैं थाना-पुलीस नहीं जाऊँगी, मेरा न्याय भगवान करेंगे, अब उन्हीं के दरबार में फिरियाद करूँगी।

किसी ने पूँ न की, कोई मिनमिनाया तक नहीं। पापाण-मूर्तियों की भाँति सब-के-सब सिर झुकाए खड़े रहे।

इतनी देर में सारा गाँव जमा हो गया था। सुखिया ने एक बार फिर बालब के मुँह की छोर देखा। मुँह से निकला—हाय मेरे लाल ! फिर वह मूच्छित होकर गिर पड़ी। प्राण निकल गए। बच्चे के लिए प्राण दे दिए !

माता, तू धन्य है ! तूक जैसी निष्ठा तूक जैसी धृष्टा, तूक जैसा विद्वान देवताओं को भी दुर्लभ है !

निमन्त्रणा



विदित मोटेराम शान्त्रो ने अन्दर जाकर अपने विशाल
उदर पर हाथ फेरते हुए यह पद पञ्चम स्वर
में गाया—

अनगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम,
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम !

मोना ने प्रफुल्लित होकर पूछा—कोई मीठी-ताजी खप है क्या ?

शाम्प्रीजी ने पैतरे बदल कर कहा—मार लिया आज । ऐसा ताक कर
मार कि चारों ग्यान चित् । सारे घर का नेत्रता ! सारे घर का ! वह
बड़-बड़कर हाथ मारूँगा कि देखनेवाले टग रह जायँ । उदर महाराज
अभो से अघीर हो रहे हैं ।

मोना—कहीं पदले की भाँति अन्न की भी धोखा न हो । पका पोडा
कर लिया है न ?

मोटेराम ने मूँछें पेंडते हुए कहा—ऐसा अमगुन मुँह से न निकालो ।
बड़े जप-तप के बाद यह शुभ दिन आया है । जो तैयारियाँ करनी
हो कर लो ।

मोना—वह तो करूँगी ही । क्या इतना भी नहीं जानती ? अन्न
भर घाघ घोडे ही खोदती रही हूँ । मगर है घर भर का न ?

मोटेराम—अन्न और कैवे कहूँ ? परे घर भर का है । इसका अर्थ
समझ में न आया हो तो मुझसे पूछो । विद्वानों की बात समझना सबका
काम नहीं । अगर उनकी बात समी समझ लें तो उनकी विद्वत्ता का
सहस्त्व ही क्या रहे । ब्राह्मो क्या समझीं । मैं हूँ समय बहुत ही मर

भाषा में बोल रहा हूँ, मगर तुम नहीं समझ सकीं। बताओ, 'विद्वत्ता' किसे कहते हैं? 'महत्त्व' ही का अर्थ बताओ। घर भा. का निमन्त्रण देना क्या दिखलगी है। हाँ, ऐसे अवसर पर विद्वान् लोग राजनीति से काम लेते हैं और उसका वही आशय निकालते हैं जो अपने मनकूल ही। सुरादपुत्र की रानी साहय खात ब्राह्मणों को इच्छापूर्ण भोजन कराना चाहती हैं। कौन कौन महाशय मेरे साथ जायेंगे, यह निर्णय करना मेरा काम है। अलनूराम शास्त्री, वेनीराम शास्त्री, छेदीराम शास्त्री, भवानीराम शास्त्री, फेकूराम शास्त्री, और मोटेराम शास्त्री आदि जब इतने घादमी अपने घर ही में तब बाहर कौन ब्राह्मणों को खोजने जाय।

सोना—आर स.तवाँ कौन है ?

मोटे—बुद्धि को दौड़ाओ।

सोना—एक पत्तल घर लेते आना।

मोटे—फिर वही बात कही जिसमें बदनामी हो। छी-छी, पत्तल घर लाऊँ। उम पत्तल में वह स्वाद कहीं जो यजमान के घर बैठकर भोजन करने में है। सुनो खातवें महाशय हैं पण्डित सोनाराम शास्त्री।

सोना—बहो, दिखलगी करते हो। भला मैं कैसे जाऊँगी ?

मोटे—ऐसे ही कठिन अवसरों पर तो विद्या की आवश्यकता पडनी है। विद्वान् घादमी अवसर को अपना सेवक बना लेना है, सुख अपने भाग्य को रोता है। सोनादेवी और सोनाराम शास्त्री में क्या अन्तर है, जानती हो? देवत परिधान का। परिधान का अर्थ समझती हो? परिधान 'पहचान' को कहते हैं। इसी यादी को मेरी तरह बाँध लो, मेरी मिरजई पहन लो, ऊपर स चादर छोड़ लो। पगड़ी में बाँध दूँगा। फिर धौम पहचान सडता है !

सोना ने हाँ कर रहा—हूँगे तो लाज लगी।

मोटे—तुम्हें करना ही क्या है ? बातें तो हम करेंगे । सोना ने मन ही मन आनेवाले पदार्थों का आनन्द लेकर कहा—बड़ा मजा होगा ।

मोटे—बस अब बिलम्ब न करो । तैयारी कर चलो ।

सोना—कितनी फकी घना लूँ ?

मोटे—यह मैं नहीं जानता । बस यही आदर्श सामने रखो कि अधिक से अधिक लाभ हो ।

सहसा सोनादेवी को एक बात याद आ गई । बोली—अच्छा इन विद्युओं को क्या करूँगी ?

मोटेराम ने त्योरी घडा कर कहा—इन्हें उठाकर रत देना, और क्या करोगी !

सोना—हाँ जी, क्यों नहीं । उतार कर रख क्यों न हूँगी !

मोटे—तो क्या तुम्हारे विद्युए पहनने ही से मैं जी रहा हूँ । जीता हूँ पीष्टिक पदार्थों के सेवन से । तुम्हारे विद्युओं के पुण्य से नहीं जीता ।

सोना—नहीं माई, मैं विद्युए न उतारूँगी ।

मोटेराम ने मोचकर कहा—अच्छा पहने चलो । कोई हानि नहीं । वेद्वानधारी यह बाधा भी हर लेंगे । बस, गाँव से बहुत से रुपये लपेटे जा । मैं कहूँगा हत्त पण्डितजी को पीलावाँट हो गया है । ज्यों भी उम्मी ?

पण्डितनाइन ने पतिदेव को प्रगसा-सूचक नेत्रों से देखकर कहा—
। भर पटा नहीं है ।

(२)

सन् मा-समय पण्डितजी ने पाँचों पुत्रों का बुराया और उद्वेग करने लगे—पुत्रों, डोई काम करने के पदले मूव मोच समझ लेना चाटिप कि

कैसे क्या होगा। मान लो, रानी साहब ने तुम लोगों का पता-ठिकाना पृच्छना आरम्भ किया तो तुम लोग क्या उत्तर दोगे। यह तो महानसूर्तिता होगी कि तुम सब मेरा नाम ला। सोचो, कितने फलक और लज्जा की बात होगी कि मुम-जैसा विद्वान् केवल भोजन के लिए बड़ा कुचक रचे। इसलिए तुम सब थोड़ी देर के लिए भूल जाओ कि मेरे पुत्र हो। कोई मेरा नाम न बतलाए। तंसार में नामों की कमी नहीं, कोई अच्छा मा नाम चुन कर घना देना। पिता का नाम बतलाने से कोई गाली नहीं लगती। यह कोई अपराध नहीं।

प्रलभू—चाप ही न घना ढीजिए।

मोटे—अच्छी बात है, बहुत अच्छी बात है। हाँ इतने महत्त्व का काम मुझे स्वयं करना चाहिए। अच्छा सुनो—प्रलगूराम के पिता का नाम है पण्डित वंशव पाँडे, खूब याद कर लो। बेनीराम के पिता का नाम है पण्डित मंगरू ओका, खूब याद रखना। छेदीराम के पिता है पण्डित दमडी तिवारी। भूलना नहीं। भवानी, तुम गंगू पाँडे बतलाना खूब याद कर लो। अर रहे फेकूराम। तुम घेठा बतलाना सेतूराम पाठक। हो गए नय। हो गया लखका नाम-करण। अच्छा अब मैं परीक्षा हूँगा। हो गियार रचना। दोहो शब्द, तुम्हारे पिता का ~~नाम~~ नाम

प्रलभू—पण्डित वंशव पाँडे ?

“बेनीराम, तुम बतारो।”

“दमडी तिवारी”

मोटे—यह तो मेरे पिता का नाम है।

वेना—मैं तो भूल गया।

मोटे—भूल गए। पण्डित के पुत्र होकर तुम एक नाम भी नहीं राख सकते। ऐसे दुःख की बात है। मुझे पाँचों नाम याद हैं, तुम्हें

एक नाम भी याद नहीं! सुनो, तुम्हारे पिता का नाम है पण्डित मँगरू श्रीका ।

पण्डितजी लडकों को परीक्षा ले ही रहे थे कि उनके परम मित्र पण्डित चिन्तामणिजी ने द्वार पर आयाज दी । पण्डित मोटेराम ऐसे घबराए कि सिर-पैर की सुधि न रही । लडकों को भगाना ही चाहते थे कि पण्डित चिन्तामणि अन्दर चले आए । दोनों स्वजनों में बचपन से ही गाढी मैत्री थी । दोनों बहुधा साथ-साथ भोजन करने जाया करते थे और यदि पण्डित मोटेराम अटवल रहते तो पण्डित चिन्तामणि के द्वितीय पद में कोई बाधक न हो सकता था पर आज मोटेरामजी अपने मित्र को पाय नहीं ले जाना चाहते थे । उनको साथ ले जाना अपने घरवालों में किसी एक को छोड़ देना था और इतना मठान् आत्मत्याग करने के लिए वे तैयार न थे ।

चिन्तामणि ने यह समारोह देखा, तो प्रसन्न होकर बोले—क्यों भाई अकेले ही अकेले ! मालूम होना है, आज कहीं गहरा हाथ मारा है ।

मोटेराम ने मुँह छटकाकर कहा—कैसी बातें करते हो मित्र । ऐसा तो कभी नहीं हुआ कि मुझे कोई सुअवसर मिला हो और मैंने तुम्हें सूचना न दी हो । कदाचित् कुछ समय ही बदल गया या किसी प्रह का फेर है । कोई मूठ को भी नहीं बुझाना ।

पण्डित चिन्तामणि ने अविश्वाम से भाव से कहा—कोई न कोई शान तो मित्र अवश्य है, नहीं तो ये बालक क्यों जमा हैं !

मोटे—तुम्हारी इन्हीं बातों पर मुझे झोप जाता है । लडकों की परीक्षा ले रहा हूँ । बाह्य के बाधक हैं । चार अक्षर पटे बिना उनका कौन पड़ेगा ?

चिन्तामणि को अब भी विश्वास न आया । उन्होंने सोचा, लडकों

में ही इस बात का पता लग सकता है। फेकूराम सबसे छोटा था। उसी से पूछा—क्या पढ़ रहे हो बेटा ? इमें भी सुनाओ।

मोटेराम ने फेकूराम को बोलने का अवसर न दिया। डरे कि यह तो तारा भडा फोड़ देगा। धोले, यह अभी क्या पढेगा। दिन भर खेलता है। फेकूराम इतना बडा अपराध अपने नन्हे से सिर पर क्यों लेता। बाल सुलभ गर्व में बोला—इनकी तो याद है पण्डित सेतूराम पाठक। एम पाठ भी याद कर लें तिस पर भी कहते हैं, हरदम खेलता है।

यह कहते हुए फेकूराम ने रोना शुरू किया।

चिन्तामणि ने बालक को गले से लगा लिया और धोले—नहीं बेटा, तुमने अपना पाठ सुना दिया है। तुम खूब पढते हो। यह सेतूराम पाठक का है बेटा। मोटेराम ने विगडकर कहा—तुम भी लडकों की बातों में आत हो। मुन लिया होगा किसी का नाम। (फेकू से) जा बाहर खेल।

चिन्तामणि अपने मित्र की घमराहट देखकर समझ गए कि कोई नतीजा नजरिय अवश्य है। बहुत दिमाग लटाने पर भी सेतूराम पाठक का क्षणिक उनकी समझ में न आया। अपने परम मित्र की इस कुटिलता पर मन में दुखित होकर बोले—अच्छा आप पाठ पढाएँ और परीक्षा लजिए। मैं जाता हूँ। तुम एतने स्वार्थी हो, इसका मुझे गुमान तक न।। धान तुम्हारी मित्रता की परीक्षा हो गई।

पण्डित चिन्तामणि बाहर चले गए। मोटेरामनी के पास उन्हें मनाने के लिए तमय न था। फिर परीक्षा लेने लगे।

तारा ने कहा—मना लो मना लो, रुठे जाते हैं। परीक्षा फिर ले लेना।

मोटे—जब कोई काम पड़ेगा, मना लूँगा। निमन्त्रण की सूचना पाते ही इनका सारा क्रोध शान्त हो जायगा। हाँ भवानी, तुम्हारे पिता का क्या नाम है, थोलो।

भवानी—गंगू पाँडे।

मोटे—और तुम्हारे पिता का नाम फेकू ?

फेकू—बता तो दिया, उस पर कहते हैं, पढता नहीं !

मोटे—हमें भी बता दो।

फेकू—सेतूराम पाठक तो है।

मोटे—बहुत ठीक, हमारा लडका बड़ा राजा है। आज तुम्हें अपने साथ बैठावेंगे और सबसे अच्छा माल तुम्हीं को तिलापूँगे।

सोना—हमें भी तो कोई नाम बता दो।

मोटेराम ने रसिकता से सुयकरा कर कहा—तुम्हारा नाम है पण्डित मोहनमरुप सुकुल।

सोनादेवी ने लजा कर सिर झुका लिया।

(३)

सोनादेवी तो लडकों को कपडे पहनाने लगी। उपर फेकू आगन्तु की उमद में घर से बाहर निकला। पण्डित चिन्तामणि रूठ पर ना चले थे, पर कुतूहलवश अभी तक द्वार पर दबके पड़े थे। फिर बातों की भनक इतनी देर में उनके कानों में पड़ी उससे यह तो ज्ञान हो गया कि कहीं निमन्त्रण है, पर कहाँ है और कौन जैन से लोग निमन्त्रित हैं, यह कुछ ज्ञान न हुआ था। इतने में फेकू बाहर निकला, तो उन्होंने इसे गोद में उठा लिया और बोले—कहाँ नेवता है प्रेश ?

अपने ज्ञान में तो उन्होंने बहुत धीरे से प्रेश था, पर न-ज्ञान के पण्डित मोटेराम के कान में भनक पड़ गई। तुरन्त बाहर निकल आया।

देखा तो चिन्तामणिजी फेरू को गोद में लिए कुछ पूछ रहे हैं। लपक कर लडके का हाथ पकड़ लिया और चाहा कि उसे अपने मित्र की गोद ने छीन लें। मगर चिन्तामणिजी को अभी अपने प्रश्न का उत्तर न मिला था। अतएव वे लडके का हाथ छोड़ा कर उसे लिए हुए अपने घर की ओर भागे। मोटेराम भी यह कहते हुए उनके पीछे दौड़े—उसे क्यों लिए जाते हो ? धूर्त कहीं का, दुष्ट ! चिन्तामणि मैं कहे देता हूँ, इसका नतीजा अच्छा न होगा, फिर कभी किसी निमन्त्रण में न ले जाऊँगा। मला चाहते हो तो उसे उतार दो। मगर चिन्तामणि ने एव न सुनी। भागते ही चले गए। उनकी देह अभी सँभाल के बाहर न हुई थी दौड़ पकते थे, मगर मोटेरामजी को एक एक पग आगे बढ़ना दुस्तर हो रहा था। भेंसे की भाँति हाँफते थे और नाना प्रकार के विशेषणों का प्रयोग करते टुलकी चाल से चले जाते थे, और यद्यपि प्रतिक्षण घन्तर बढ़ता जाता था, पर पीछा न छोड़ते थे। अच्छी घुड़-दौड़ की। नगर के दो महात्मा दौड़ते हुए ऐसे जान पड़ते थे, मानो दो गैडे चिन्तामणि घर से भाग आए हों। सैकड़ों घादमी तमाशा देखने लगे। बित्तने ही ढालक उनके पीछे तालियाँ बजाते हुए दौड़े। कदाचित् घट टोड पण्डित चिन्तामणि के घर ही पर समाप्त होती, पर पण्डित मोटेराम धोती के रीली हो जाने के कारण बलझकर गिर पड़े। चिन्तामणि ने पीछे फिर दर यह दृश्य देखा, तो रक गए और फेरू राम से पूछा—क्यों देटा वहाँ नेवता है ?

फेरू—वना है तो एसे मिटाई दोगे न !

चिन्ता—हाँ देगा दगाधो।

फेरू—जानी ले वहाँ।

चिन्ता—वहाँ की राती ९

फेरू—यह मैं नहीं जानता। कोई बड़ी रानी है।

नगर में कई बड़ी-बड़ी रानियाँ थीं। पंडितजी ने सोचा सभी रानियों के द्वार पर चक्र लगाऊँगा। जहाँ भोज होगा, वहाँ कुछ भीड़भाड़ होगी ही, पता चल जायगा। यह निश्चय करके वे लौट पड़े। सदानुभूति प्रकट करने में अब कोई बाधा न थी। मोटेरामजी के पाम श्राण, तो देना कि वे पड़े कराइ रहे हैं। उठने का नाम नहीं लेते। पबराका पड़ा—गिर कैसे पड़े मित्र, यहाँ रुहीं गडा भी तो नहीं है!

मोटे—तुमसे क्या मतलब! तुम लडके को ले जाओ, जो कुछ पूठना चाहो पूठो।

चिन्ता—मैं यह क्षपट-व्यवहार नहीं करता। दिल्लीकी की थी, तुम बुरा मान नर। ले उठ तो बैठा राम का नाम लेके। मैं सच कहता हूँ, मैंने कुछ नहीं पूठा।

मोटे—चल भूटा!

चिन्ता—जनेउ हाथ में लेकर कहता हूँ।

मोटे—तुम्हारी शपथ का विश्वास नहीं।

चिन्ता—तुम मुझे इतना धूर्त समझने दो!

मोटे—हमसे कहीं अधिक। तुम गंगा में डूब कर अपथ साधो तो नी मुने विश्वास न श्राण।

चिन्ता—दूसरा यद धान कइना तो मूँ उ रग्याउ लेता।

मोटे—तो फिर धा जाओ!

चिन्ता—पड़ले पण्डितान ते पूठ साधो।

मोटेराम यह सम्प्रक व्यत्य न मरु मरु। चउ उरु प्रैठ घाए पण्डित चिन्तामणि का हाथ पकड लिया। दोनों नित्रों में मरु युद्ध होने लगा। दोनों हनुमान्जी की स्तुति कर रहे थे और इनने योग म गगन गगन का

मानो सिद्ध दहाड रहे हों। दस ऐसा जान पड़ता था कि मानो दो पीपे छापस में टकरा रहे हैं।

मोटे—महाबली विक्रम यजरंगी।

चिन्ता—भूत पिशाच निकट नहीं आवे।

मोटे—जय जय जय हनुमान गुवाईं।

चिन्ता—प्रभु, रखिए राज हमारी।

मोटे—(बियठकर) यह हनुमान चालीमा में नहीं है ?

चिन्ता—यह हमने स्वयं रचा है। क्या तुम्हारी तरह की यह रटंत बिद्या है। जितना कहो उतना रच दें।

मोटे—अरे, हम रचने पर आ जायें तो एक दिन में एक लाख रतुतियाँ रच डालें, किन्तु इतना श्रवकाश किसे है !

दोनों महात्मा अलग खड़े होकर अपने अपने रचना-कौशल की ढींगें मार रहे थे, मल्ल युद्ध शास्त्रार्थ का रूप धारण करने लगा, जो विद्वानों के लिए उचित है। इतने में किसी ने चिन्तामणिजी के घर जाकर कह दिया कि पण्डित मोटेरास और पण्डित चिन्तामणिजी में बड़ी लड़ाई हो रही है। चिन्तामणिजी तीन महिलाओं के स्वामी थे। लुलीन ब्राह्मण थे, पूरे बीस मिरचे। उस पर विद्वान् भी सब फोटि के, दूर-दूर तक यज-माजी थी। ऐस दुर्रों को सब अधिकार है। कन्या के साथ साथ जय प्रभुर वक्षिणा भी मिलती हो तब कैसे इनकार दिया जाय। इन तीनों महिलाओं का सारे महल्ले में आतङ्क छाया हुआ था। पण्डितजी ने इनके नाम दूत ही रखीये रखे थे। बटी स्त्री को 'अमिरती', नैकली को 'गुलाबशासन' और छोटी को 'मोहनभोग' कहते थे। पर मुइस्तेवालों के लिए तीनों नतिलाएँ श्रयताप से कम न थीं। घर में नित्य आँसुओं की गली बहती रहती—इन की नदी तो पण्डितजी ने भी कभी नहीं

बहाई, अधिक से अधिक शब्दों की ही बदी बहाई थी—पर मजाल न थी कि बाहर का आदमी किसी को कुछ कह जाय। सड्डट के समय तीनों एक हो जाती थीं। यह पण्डितजी के नीति-चातुर्य का सुफल था। ज्यों ही खबर मिली कि पण्डित चिन्तामणि पर सड्डट पडा हुआ है, तीनों त्रिदोषों की भाँति कुपित होकर घर से निकलीं और उनमें जो अन्य दोनों-जैसी मोटी नहीं थी सबसे पहले समरभूमि के समीप जा पहुँची। पण्डित मोटेरामजी ने उसे आने देखा, तो समझ गए कि अब कुशल नहीं। अपना हाथ छुटाकर बगटुट भागे, पीछे फिर कर भी न देखा। चिन्तामणिजी ने बहुत ललकारा, पर मोटेराम के कदम न रुके।

चिन्ता—अजी भागे क्यों, ठहरो, कुछ मजा तो चलते जाओ !

मोटे—मैं हार गया भाई, हार गया।

चिन्ता—अजी कुछ दक्षिणा तो लेते जाओ।

मोटेराम ने भागते हुए कहा—दया करो भाई, दया करो।

(४)

आठ बजने-बजने पण्डित मोटेराम ने स्नान और पूजा करके कहा—
अब बिलम्ब नहीं करना चाहिए, फंकी तैयार है न ?

मोना—फंकी लिए तो क्या से बैठा हूँ, तुम्हें तो त्रैमे चिन्ती बात की सुब ही नहीं रहती। रात को कौन देखता है कि कितनी देर पूजा करते हो।

मोटे—मैं तुमसे एक नहीं, हजार बार कह चुका कि मेरे कामों में मत बोला करो। तुम नहीं समझ सकतीं कि मैंने इतना बिलम्ब क्यों किया। तुम्हें ईश्वर ने इतनी बुद्धि ही नहीं दी। जल्दी जाने से अपमान होता है। यत्नमान समझना है, लोभी है, भुस्यड़ है। इसी लिए चन्द्र लोग बिलम्ब किया करते हैं, त्रिममें यत्नमान समझे कि पण्डितजी को

इसकी सुध ही नहीं है, भूल गए होंगे बुलाने को आदमी भेजें। इस प्रकार जाने में जो मान-महत्त्व है वह मरभुखों की तरह जाने में क्या कभी हो सकता है ? मैं बुलावे को प्रतीक्षा कर रहा हूँ। कोई न कोई आता ही होगा। लाखो थोड़ी फंजी। बालकों को खिला दी है न ?

मोना—उन्हें तो मैंने साँझ ही को खिला दी थी।

माटे—कोई सोया तो नहीं ?

माना—घात भला कौन सोएगा। सब भूख-भूख चिल्ला रहे थे, तो मैंने एक पैसे का चबेना मँगवा दिया। सब के-सब ऊपर बैठे खा रहे हैं। सुन्ते नहीं हो, मारपीट हो रही है।

मोटेराम ने दाँत पीस कर कहा—जी चाहता है कि तुम्हारी गरदन पकड़ कर फेंक दूँ। भला इस बेला चबेना मँगाने का क्या काम था ? चबेना खा लेंगे तो बहाँ क्या तुम्हारा सिर खाएँगे। छो ! छो ! जरा भी बुद्धि नहीं !

मोना ने मर्राध स्वीकार करते हुए कहा—हाँ भूल तो हुई, पर सब-से तब इतना कोलाहल मचाए हुए थे कि सुना नहीं जाता था।

मोटे—रोते ही थे न, रोने देतीं। रोने से उनका पेट न भरता, बल्कि घार भूख खुल जाती।

सहसा एक आदमी ने बाहर न आवाज दी—पण्डितजी, नहारानी बुला रही है, और लोगों को लेकर जल्दी चलो।

पण्डितजी ने पत्नी की घोर गर्व से देखकर कहा—देखा, इसे निमन्त्रण करते हैं। अब तैयारी करनी चाहिए।

बाहर आकर पण्डितजी ने उस आदमी से कहा—तुम एक क्षण और रुक जाते तो मैं क्या सुनाने चला गया होता। मुझे बिल्कुल याद न थी। अगर इस बहुत शीघ्र आते हैं।

(५)

नौ बजते-बजते पण्डित मोटेराम बाल-गोपाल सहित रानी साहब के द्वार पर जा पहुँचे। रानी घड़ी विशाङ्गकाय तेजस्विनी महिला थीं। इस समय वे कारचोरीदार तकिया लगाए तरत पर बैठी हुई थीं। जो आदमी हाथ बाँधे पीछे खड़े थे। चिन्ली का पत्ता चल रहा था। पण्डितजी को देखते ही रानी ने तगन से उठ कर चरण-स्पर्श किया, और इस बालक-मंडली को देख कर मुसफराती हुई बोलीं—इन बच्चों को आप कहाँ से पकड़ लाए ?

मोटे—इरता क्या, मारा नगर छान मारा, पर किमी पण्डित न खाना स्वीकार न किया। कोई किसी के यहाँ निमन्त्रित है, कोई किना के यहाँ। तब तो मैं बहुत चक्राया। अन्त में मैं उनसे कहा—अन्ना आप नहीं चलते तो हरि इच्छा, लेकिन ऐसा कीजिए कि मुझे लजित न होना पड़े। तब जघरदस्ती प्रत्येक ने घर से जो बालक मिला उसे पकड़ खाना पड़ा। क्यों फेकुराम, तुम्हारे पिताजी का क्या नाम है ?

फेकुराम ने गर्व से कहा—पण्डित सेतूराम पाठक।

रानी—बालक तो बड़ा होनहार है।

और बाळकों को भी उत्कण्ठा हो रही थी कि हमारी पगीदा भी ली जाय, लेकिन जब पण्डितजी ने उनसे कोई प्रश्न न किया, पधर रानी ने फेकुराम की प्रशंसा कर दी, तब तो वे अधीर हो गये। भवानी बोली—मेरे पिता का नाम है पण्डित गगु पाँडे।

छेदी बोली—मेरे पिता का नाम है दमडी तिवारी।

वेनीराम ने कहा—मेरे पिता का नाम है पण्डित मंगल घोषा। अन्नगराम समझदार था। लुपचाप खटा रहा। रानी ने उससे पूछा—तुम्हारे पिता का क्या नाम है ?

अलगूराण को एस वक्त पिता का निर्दिष्ट नाम याद न आया । न यही सूझी कि कोई और नाम ले ले । हतबुद्धि-या खडा रहा । पण्डित मोटेराम ने जब उमकी ओर दाँत पीस कर देखा तब रहे-सहे इवास भी नायब हो गए ।

फेकू ने कहा—हम यता दें । भैया भूल गए ।

रानी ने आश्चर्य से पूछा—क्या अपने पिता का नाम भूल गया ? यत तो विचित्र बात देखी ।

मोटेराम ने अलगू के पास जाकर कहा—कैसे है । अलगूराम योल बटा—केगव पाँडे ।

रानी—तो अब तक क्यों चुप था ?

मोटे—कुछ ऊँचा सुनता है सरकार ।

रानी—मैंने सामान तो बहुत-ता सँगवा रखा है । सब खराब होगा । लटके क्या खाँदेंगे !

मोटे—सरकार एन्हें बालक न समझे । इनमें जो सबसे छोटा है वह दो पत्तल खाकर बटेगा ।

(६)

जब सामने पत्तल पट गए और भडारी चाँदी के चालों में एक से एक उत्तम पदार्थ ला लाकर परसने लगा तब पण्डित मोटेरामजी की साँसें रुक गईं । इन्हें आण-दिन निमन्त्रण मिलते रहते थे, पर ऐसे अनुपम पदार्थ कभी सामने न आए थे । धी धी ऐसी सौंधी सुगन्ध उन्हें कभी न मिली थी । प्रत्येक वस्तु से वेबटे और गुलाब की लपटें उठ रही थीं धी टपक रहा था । पण्डितजी ने सोचा, ऐसे पदार्थों से कभी देर भर सहसा है । मनों ह्या जाऊँ, फिर भी छोर खाने दो डी चाहे ।

देवतागण इनसे उत्तम और कौनसे पदार्थ खाते होंगे ? इनसे उत्तम पदार्थों की तो कल्पना भी नहीं हो सकती ।

पण्डितजी को इस वक्त अपने परममित्र पण्डित चिन्तामणि की याद आई । अगर वे होते तो रंग जम जाता । उनके बिना रंग फोका रहेगा । यहाँ दूसरा कौन है, जिससे लाग-डाट करूँ । लडके दो दो पत्तलों में चें षोल जायँगे । सोना कुछ साथ देगी, मगर कम तक ! चिन्तामणि के बिना रंग न गडेगा । वे मुझे ललकारेंगे, मेे उन्हें लल काँगा । उस उमर में पत्तलों की कौन गिनती । हमारी देखा देयो लडके भी डट जायँगे । ओह बडी भूल हो गई । यह प्याल मुझे पइले न आया । रानी साहब से कहूँ, बुरा तो न मानेंगी । उँह ! जो कुछ हो, एक बार जोर तो छगाना ही चाहिए । तुरन्त खडे होकर रानी साहब से बोलें—सरकार ! आज्ञा हो तो कुछ कहूँ ।

रानी—कहिण-कहिण महाराज, क्या क्रिमी बस्तु की कमी है ?

मोटे—नहीं सरकार, क्रिमी बात की नहीं । ऐसे उत्तम पदार्थ तो मैंने कमी देने भी न थे । मारे नगर में आपकी कीर्ति फैल जायगी । मेरे एक परम मित्र पण्डित चिन्तामणिजी हैं, आज्ञा हो तो उन्हें भी बुला लूँ । बडे विद्वान् दर्शनिए ब्राह्मण हैं । उनके जोर का डण नगर में दूसरा नहीं है । मैं उन्हें निमन्त्रण देना भूल गया । अभी सुध भाई है ।

रानी—आपकी इच्छा हो तो बुला लीजिए । मगर जाने आने में देर होगी और अोजन परोसा गया है ?

मोटे—मैं अभी आता हूँ सरकार, दौड़ता हुआ जाऊँगा ।

रानी—मेरी मोटर ले लीजिए ।

तब पण्डितजी अपने को नैयाम रूप तब सोना से ऊदा—तुम्हें आज्ञा क्या हो गया है जी ? होने क्यों बुला रहे हा ?

मोटे—कोई साध देनेवाला भी तो चाहिए ?

सोना—मैं क्या तुमसे दब जाती ?

पण्डितजी ने मुसकरा कर कहा—तुम जानती नहीं, घर की बात और है, दङ्गल की बात और । पुराना खिल्लाड़ी मैदान में जाकर जितना नाम करेगा उतना नया पट्टा नहीं कर सकता । वहाँ बल का काम नहीं, साहस का काम है । बल यहाँ भी बड़ी हाल समझो । आज झण्डे गाढ़ दूँगा । ममक लेना ।

सोना—कहीं लडके सो जाय तो ?

पण्डित—और भूय खुल जायगी । जगा तो मैं लूँगा ।

सोना—देख लेना आज वह तुम्हें पछाडेगा । उसके पेट में तो मनीचर है ।

पण्डित—बुद्धि की सर्वप्रधानता रहती है । यह न समझो कि भोजन करने की कोई विद्या ही नहीं । इसका भी एक शास्त्र है, जिसे मथुरा के शनीचरानन्द महाराज ने रचा है । चतुर आदमी थोटी-सी जगह में गृहरथी का सब सामान रख देता है । घनाडी बहुत सी जगह में भी यही सोचता रहता है कि कौन वस्तु कहाँ रक्वूँ । रंगार धादमी पहले से ही एक एक कर खाने लगता है और घट एक लोटा पानी पीकर झफर जाता है । चतुर आदमी बड़ी सावधानी से खाता है, उसको खोर नीचे उतारने के लिए पानी की आवश्यकता नहीं पडती । देर तक भोजन करते रहने से वह सुपाप भी हो जाता है । चिन्तामणि मेरे मानने क्या टहरेगा ?

(७)

चिन्तामणिजी अपने आँगन में उदास बैठे हुए थे । जिस प्राणी को वह अपना परन्तितैसी समझते थे, जिसके लिए वे अपने प्राण तक देने

को तैंगर रहते थे, उमी ने आज उनके साथ बेवफाई की। बेवफाई ही नहीं की, उन्हें उठाकर दे मारा। पण्डित मोटेराम के घर से तो कुठ जाता न था। अगर वे चिन्तामणिजी को भी साथ लेते जाते तो क्या रानी साक्ष्य उन्हें दुत्कार देतीं। स्वार्थ के आगे कौन क्रिमको पूछता है? उन अमूल्य पदार्थों की कहरना करके चिन्तामणि के मुँह से लार टपड़ी पड़ती थी। अब सामने पत्तल भा गए होंगे! अब थालों में अमिरतियाँ लिए भडारीजी आए होंगे! ओ हो, कितनी सुन्दर, कोमल, कुरकुरी, रसीली, अमिरतियाँ होंगी। अब बेसन के लड्डू आए होंगे। ओहो, कितने सुडौल मेवों में भरे हुए, घी से तरातर लड्डू होंगे। मुँह में रगते ही गवने चुट जाते होंगे, जीभ भी न टुलानी पड़ती होगी। अहा! अब मोहनभाग आया होगा! हाय रे दुर्भाग्य! मैं यहाँ पटा सड़ रहा हूँ और वहाँ यह बहार है! बडे निर्दयी हो मोटेराम, तुमसे इस निष्ठुरता की आशा न थी।

अमिरतीदेवी थोड़ी—तुम इतना दिल क्यों छोटा करत हो। पित पक्ष तो आ ही रहा है, ऐसे-ऐसे न-जाने कितने नेत्रने आवेंगे।

चिन्तामणि—शाज किमी अभागे का मुँह देखकर उठा दा। टाओ तो पत्रा, देगूँ, कैसा सुहूर्त है। अब नहीं रहा जाता। मारा नगर छान डालूँगा, कहीं तो पता चलेगा, नासिका तो दहनी चल रही है।

एकएक मोटर की आवाज आई। उमरे प्रकाश से पण्डितजी का मारा घर जगमगा उठा। वे पिटका से झाँकने लगे, तो मोटेराम को भोग्य से उतरते देखा। एक लम्बी साँस लेकर चारपाई पर गिर पड़े। मन में कहा कि दृष्ट भोजन करने अब यहाँ मुझसे बचान करने आया है।

अमिरती देवी ने पूछा—कौन है टाटीजार, इतनी रात का जगावन है।

मोटे—हन हैं हम! गाली न दो।

अमिरती—घरे दुर मुँहभौंसे, ते कौन है ! कहत है हम है हम ।
को जाने तें कौन हस ?

मोटे—अरे हमारी बोली नहीं पहचानती हो । खूब पहचान लो ।
हम हैं, तुम्हारे देवर ।

अमिरती—ऐ दुर तोरे मुँह में लूका लागे । तोर लडास उठे । हमार
देवर बनत है ढाढीजार !

मोटे—घरे हम हैं मोटेराम शास्त्री । क्या इतना भी नहीं पहचानती !
चिन्तामणिजी घर में हैं ?

अमिरती ने किचाड खोल दिश और तिरस्कार भाव से बोली—
अरे तुम थे ! तो नाम क्यों नहीं बताते थे ! जब इतनी गाटियाँ खा लीं
तो शोल निकला । क्या है क्या !

मोटे—कुछ नहीं, चिन्तामणिजी को शुभ मघाद देने आया हूँ ।
रानी साहब ने उन्हें याद किया है ।

अमिरती—भोजन के बाद बुला कर क्या करेंगी ?

मोटे—अभी भोजन कहाँ हुआ है ! मैंने जब इनकी विद्या, कर्म-
निष्ठा सद्बिचार की प्रशंसा की तब सुग्ध हो गईं । मुझसे कहा कि उन्हें
मोटर पर लाओ । क्या सो गए !

चिन्तामणि चारपाई पर पड़े-पड़े लुन रहे थे । जो मैं आता था, चक्कर
मोटेराम दो चरणों पर गिर पड़े । उनके दिपय में सब तरु जितने वृत्तित
विचार उठे थे, सब लुप्त हो गए । ग्लानि का आविर्भाव हुआ । रोने लगे ।

“अरे भाई, धाते एो ना सोते ही रहोने” — यह कहते हुए मोटेराम
रा के आने का दर खटे हो गए ।

दि ता—तद एतो न हं गए । जब इतनी वृद्धता कर ली तब जाए ।
• नी सब पीट में दर्ट हो रहा है ।

मोटे—अजो वह तर माल खिलाऊँगा कि नारा दर्द-दर्द भाग जायगा । तुम्हारे यज्ञमार्तो को भी ऐसे पदार्थ मयस्वर न हूँ होंगे । आज तुम्हें बदकर पठाईँगा ।

चिन्ता—तुम बेचारे मुझे क्या पठाओगे । मारे शहर में तो कोई ऐसा माई का लाल दिखाई नहीं देता । हमें शनीचर का इष्ट है ।

मोटे—अजी यहाँ बरखों तपस्या की है । भडारे का भडारा म्हाक कर दें और दृच्छा ज्यों की त्यों बनी रहे । बस यही समझ लो कि भोगन करके हम खडे नहीं हो सकते । चलना तो दूसरी यात है । गाडी पर लद कर आते हैं ।

चिन्ता—तो यह कौन यडां यात है । यहाँ तो टिकठी पर उठा कर लाए जाते हैं । ऐसी ऐसी उकारें लेते हैं कि जान पडता है, कम गोगा छूट रहा है । एक बार गोपिया पुलिम ने कम गोले के सन्देह में घर की तलाशी तक ली थी ।

मोटे—फूड थोजते हो । कोई हम तरह नहीं उकार सकता ।

चिन्ता—अच्छा तो आकर सुन लेना । उर कर भाग न जाओ, तो मत्री ।

एक अणु में दोनों मित्र मोटर पर बैठे और मोटर चली ।

रानी के पाल पहुँच जाऊँ और कह दूँ कि पण्डित को ले आया, और चिन्तामणि चाहते थे कि पहले मैं रानी के सम्मुख जा पहुँचूँ और अपना राग जमा दूँ। दोनों कदम बढाने लगे। चिन्तामणि हल्के होने के कारण जरा झाने बढ गए, तो पण्डित मोटेराम दौडने लगे। चिन्तामणि भी दौड पडे। घुडदौड सी होने लगी। मालूम होता था कि दो गैडे भागे जा रहे हैं। अन्त को मोटेराम ने हाँफते हुए कहा—राजसभा में दौडते हुए जाना उचित नहीं।

चिन्ता—तो तुम धीरे धीरे आओ न, दौडने को कौन कहता है।

मोटे—जरा रुक जाओ, मेरे पैर में काँटा गट गया है।

चिन्ता—नो निकाल लो, तब तक मैं चलता हूँ।

मोटे—मैं न कहता तो रानी तुम्हें पृथ्वी भी न।

मोटेराम ने बहुत बहाने किए, पर चिन्तामणि ने एक न सुना। भवशु में पहुँचे। रानी साहब बैठी कुछ लिख रही थीं और रह-रह कर द्वार की ओर ताक लेती थीं कि सहासा पण्डित चिन्तामणि उनके खानने धा खड़े हुए और यों स्तुति करने लगे।

हे हे यशोदे नृ बालदेव, सुरार नामा

रानी - क्या मतलब है! अपना मतलब कहो।

चिन्ता- सरकार को घासीबाद देता हूँ। सरकार ने इस काम चिन्तामणि को निमन्त्रित करके जितना अनुग्रहित (अनुग्रहीत) दिया है उतना अपना शेषनाम अपनी सहाय जिभ्या द्वारा भी नहीं कर सकते।

रानी—तुम्हारा ही नाम चिन्तामणि है। वे कहीं नष्ट गए पण्डित मोटेराम साहब।

चिन्ता- पीठे आ रहा है सरकार, मेरे बरत - आ मन्ना है मन्ना। मेरा तो रिष्य है।

रानी—भ्रष्टा तो वे आपके शिष्य हैं !

चिन्ता—मैं अपने सुँह से अपनी पडाई नहीं करना चाहता। सरकार ! विद्वानों को नम्र होना चाहिए। पर जो यथार्थ है वह तो सारा समार जानता है। सरकार मैं किसी से वाद विवाद नहीं करता, यह मेरा अनुशीलन (अमीष्ट) नहीं। मेरे शिष्य भी बहुधा मेरे गुण बन जाने हैं, पर मैं किसी से कुछ नहीं कहता। जो सत्य है वह सभी जानते हैं।

इतने में पण्डित मोटेराम भी गिरते-पडते हाँफने हुए आ पहुँचे और यह देखकर कि चिन्तामणि भद्रता और सभ्यता की मूर्ति बने खड़े हैं वे देवोपम शान्ति के साथ सड़े हो गए।

रानी—पण्डित चिन्तामणि बड़े माधु प्रकृति विद्वान् हैं। श्राव उनके शिष्य हैं, फिर भी वे आपका अपना शिष्य नहीं कहते।

मोटे—सरकार, मैं इनका दामानुदान हूँ।

चिन्ता—जगतारिणो, मैं इनका चाण रज हूँ।

मोटे—रिपुदलनहारिणीजी, मैं इनके द्वार का कूकर हूँ।

रानी—आप दोनों यजन पृथ्वी हैं। एक से एक बड़े हुए। चलिए भोजन कीजिए।

दो वीरों की भाँति आमने-सामने बटे बैठे हैं। दोनों अपना अपना पुरु-
पार्थ दिखाने के लिए अधीर हो रहे थे।

चिन्ता—भडारीजी, तुम परोसने में बड़ा विलम्ब करते हो। क्या
भीतर जाकर नोने लगते हो ?

भडारी—चुपाई मारे बैठे रहो, जोन कुछ होई, सब धाय जाई।
घबटाए का नहीं होत। तुम्हारे सिवाय और कोई जिवैया नहीं बैठा है।

नाटे—भैया, भोजन करने के पहले कुछ देर सुगन्ध का स्वाद
तो लो।

चिन्ता—अजी सुगन्ध गया झूठे में, सुगन्ध देवता लोग लेते हैं।
अपने लोग तो भोजन करते हैं।

नाटे—अच्छा यताओ, पहले किस चीज पर हाथ फेरोगे ?

चिन्ता—मैं जाता हूँ, भीतर से सब चीजें एकसाथ लिए आता हूँ।

नाटे—धीरज धरो भैया, मद्य पदार्थों को घा जाने दो। टाकुरजी
का भोग तो लग जाय।

चिन्ता—तो दैठे क्यों हो, तब तक भोग ही लगाओ। एक बाधा तो
सिंह। नहीं, लामो, मैं चटपट भोग लगा दूँ। व्यर्थ देर करोगे।

इतने में रानी आ गईं। चिन्तामणि सावधान हो गए। रामायण
का चौपाइयों का पाठ करने लगे—

रहा एक दिन हवधि अधारा। समुक्त मन दुख भयउ अपारा ॥

वीरलेश वस्त्र के जाये। हम पितु दचन मानि दन आये ॥

वृद्धि प-दि लक्ष्मी कपि जारी। कृद परा तब लिष्टु मभारी ॥

जेहि पर आकर सत्य सनेह। ता तेहि मिले न कहु सदेह ॥

जानवत के दचन सुहाए। सुनि हनुमान हृदय धति माए ॥

परिपन्न मोरान ने देला कि चिन्तामणि का रद अनता जाता है,

तो वे भी अपनी विद्वत्ता प्रकट करने को व्याकुल हो गए। बहुत दिनाग लड़ाया, पर कोई श्लोक, कोई मन्त्र, कोई कवित्त गाद न पाया। तब उन्होंने लीधे लीधे राम-नाम का पाठ आरम्भ कर दिया।

“राम भज, राम भज, राम भज रे मन”—इन्होंने इतने उग्र स्वर से जाप करना शुरू किया कि चिन्तामणि को भी अपना स्वर ऊँचा करना पड़ा। मोटेराम और जोर से गरजने लगे। उतने में भदारीजी ने कहा—महाराज अब भोग लगाइए। अब सुनिए उस प्रतिस्पर्द्धा का अन्त हुआ। भोग की तैयारी हुई। बालवृन्द मजग हो गए। किसी ने घण्टा लिया, किसी ने घड़ियाल, किसी ने शह, किसी ने करताल। चिन्तामणि ने आरती उठा ली। मोटेराम मन में पेंडकर रह गए। रानी के समीप जाने का यह अवसर उनके हाथ से निकल गया।

पर यह किसे मालूम था कि विधि वाम उधर कुछ और ही कुदिल क्रीडा कर रहा है। आरती समाप्त हो गई थी, भोजन शुरू होने को ही था कि एक कुत्ता न-जाने किधर से आ निकला। उपडित चिन्तामणि के हाथ से लट्टू थाल में गिर पडा। पण्डित मोटेराम अचक्का कर रह गए। सर्वनाथ !

चिन्तामणि ने मोटेराम से इशारे में कहा—अब क्या करने हो मित्र, कोटि रपाय निकालो, यहाँ तो कमर टूट गई।

मोटेराम ने लम्बी साँस लींचकर कहा—अब क्या हो सकता है ? यह मामुर आया किधर से ?

रानी पास ही गयी थी, उन्होंने कहा—अरे, कुत्ता किधर पे आ गया ? यह तो रोच वैवा रचना था, आज कैसे छूट गया। अब तो रमोई अट्ट हो गई।

चिन्ता—सरकार, आचार्यों ने द्रम विषय में...

मोटे—कोई हर्ज नहीं है सरकार, कोई हर्ज नहीं है !

लोना—भाग्य फूट गया । जोहत-जोहत घाघी रात बीत गई, तबई विपत फाट पड़ी ।

चिन्ता—सरकार, स्वान के मुख में अमृत.....

मोटे—तो सब आशा ही तो चले ।

रानी—हाँ और क्या । मुझे बड़ा दुःख है कि इस कुत्ते ने आज इतना बड़ा अनर्थ कर डाला । तुम बड़े गुन्ताख हो गए टानी । भंडारी, वे पत्तल उठाकर मेहतर को दे दो ।

चिन्ता—(लोना से) छाती फटी जाती है ।

लोना को बालकों पर दया आई । बेचारे इतनी देर देवोपम धैर्य के साथ बैठे थे । इस चलता तो कुत्ते का गला घोट देही । बोली—लरदान वा तो दोष नहीं परत है । इन्हें काहे नाहीं ख्वाय देत फोज ।

चिन्ता—मोटेराम महादुष्ट है । एल्की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है ।

लोना—ऐसे तो बड़े विद्वान् बनत रहें । सब काहे नाहीं दोलत बनत । मुँह में दही जम गया जीभे नाहीं खुलत है ।

चिन्ता—सत्य कहता हूँ, रानी को चकमा दे देता इस दुष्ट के मारे सब खेल दिगट गया । सारी परिणामा मन में रह गई । ऐसे पदार्थ सब कहां मिल सकते हैं ?

लोना—सारी सजुर्ई निकल गई । घर ही में गरज के सेर हैं ।

रानी ने भंडारी को बुलाकर कहा—इन छोटे-छोटे तीनों बच्चों को खिला दो । वे बेचारे क्यों भूखों मरें क्यों फेकूराम, मिटाई खाओगे ।

फेकू - इसी लिए तो खाए हैं ।

रानी—चिन्ता मिटाई खाओगे ?

फेकू - बहुत ही, (हाथों से दता कर) इतनी !

रानी—अच्छी बात है। जितनी खाओगे वतनी मिलेगी। पर जो बात मैं पूछूँ वह बतानी पड़ेगी। यताओगे न ?

फेकू—हाँ बताना, पूछिए।

रानी—भूठ बोले तो एक मिठाई भी न मिलेगी, समझ गए।

फेकू—मत डीजिएगा। मैं भूठ बोलूँगा ही नहीं।

रानी—अपने पिता का नाम बताओ।

मोटे—बालकों को हरदम सत्र बातें स्मरण नहीं रहतीं। उसने तो भूठ ही आते बता दिया था।

रानी—मैं फिर पूछती हूँ, इसमें आपकी क्या हानि है ?

चिन्ता—नाम पूछने में तो कोई हर्ज नहीं।

मोटे—तुम चुप रहो चिन्तामणि, नहीं तो ठीक न होगा। मेरे क्रोध को अभी तुम नहीं जानते। दया बँटूँगा तो रोते भागोगे।

रानी—आप तो व्यर्थ इतना क्रोध कर रहे हैं। बोलो फेकूराम, चुप क्यों हो। फिर मिठाई न पाओगे।

चिन्ता—महारानी की इतनी दया-दृष्टि तुम्हारे ऊपर है, बताने देना !

मोटे—चिन्तामणिनी, मैं देव रहा हूँ तुम्हारे अर्द्धिन आण है। उर नदी बनाना तुम्हारा माना। आप वहाँ से बड़े गैरवाह बन के।

मोना—अरे हाँ, लरहन से टै सत्र पँचारा म का मनलत्र। तुमक जम परे मिठाई देव, न घरम परे न देव। ई का हि बाप दा नाम बनाओ तत्र मिठाई देव।

फेकूराम ने धीरे से कौटं नाम लिया। इस पर पण्डितजी ने उर इतने जोर से डाटा कि उनका आँसू बात मुँह में ही रह गई।

रानी—क्यों डाटने हो, उसे कौटने क्यों नहीं दे। बोलो देना !

मोटे—घ्राप हमें अपने द्वार पर बुलाकर हमारा अपमान कर रही हैं।

चिन्ता—इसमें अपमान की तो कोई बात नहीं है भाई।

मोटे—अब हम इस द्वार पर कभी न आवेंगे। यहाँ सत्पुरुषों का अपमान किया जाता है।

अलगू—कहिए तो मैं चिन्तामणि को एक पटकन दूँ।

मोटे—नहीं बेटा, दुष्टों को परमात्मा स्वयं दण्ड देता है। चलो यहाँ से चलो। अब भूल कर भी यहाँ न आवेंगे। खिलाना न फिलाना, द्वार पर बुलाकर ब्राह्मणों का अपमान करना। तभी तो देश में आग लगी हुई है।

चिन्ता—मोटेराम, महारानी के सामने तुम्हें इतनी कटु बातें न करनी चाहिए।

मोटे—यव चुप ही रहना, नहीं तो सारा क्रोध तुम्हारे ही सिर जायगा। माता पिता का पता नहीं, ब्राह्मण बनने चले हैं। तुम्हें कौन कहता है ब्राह्मण।

चिन्ता—जो कुछ मन चाहे कह लो। चन्द्रमा पर धुकने से धुक अपने ही मुँह पर पड़ता है। जब तुम धर्म का एक लक्षण भी नहीं जानते तब तुमसे क्या बातें कर्म्। ब्राह्मण को धैर्य रखना चाहिए।

मोटे—पेट के गुगाम लो। ठहरसोहाती कर रहे हो कि एकाध पत्तल मिल जाय। वहाँ मर्यादा का पालन करते हैं।

चिन्ता—कह तो दिया भाई कि तुम बड़े, मैं छोटा, अब और क्या लूँ। हम सब कहते दोगे मैं ब्राह्मण नहीं, शूद्र हूँ।

रानी—ऐसा न कहिए चिन्तामणिजी, आप यदि जन्म से शूद्र भी हों ही इतने गृह्य रखते तब आप ब्राह्मण ही हैं।

मोटे—अपना चिन्तामणि, इसका बटला न लिया तो कहना।

यह कहते हुए पण्डित मोदिराम बाल चन्द्र के साथ बाहर चले आए और भाग्य को सोमते हुए घर को चले । बार बार पत्रता रहे थे कि इस दुष्ट चिन्तानिधि को क्यों बुला लाया ।

मोना ने कहा—भट्टा फूटत-फूटत पत्र गया । फेजुआ गाँव यताय देत । काटे रे, अपने दाज केर गाँव यताय देते ।

फेजु—और क्या । वे तो सच-सच पूजनी थीं ।

मोटे—चिन्तानिधि ने रत्न जमा लिया अब आनन्द से भोगन करेगा ।

मोना—गुम्हार एको जिजा कान न आई । ज तीन बाजी मार लेगा ।

मोटे—मैं तो जानता हूँ, रानी ने जान बूझ कर दुत्ते को बुला लिया ।

मोना—मैं तो ओसा मुँहे देगत ताड गई कि हमका पदचान गरुं ।

इसपर तो ये लोग पड़लाने चले गये । उपर चिन्तानिधि की पाँचों दी में थीं । आसन मारे मोटा कर रहे थे । रानी अपने हाथों से मिठा-टियाँ परोस रही थीं । बालालिप भी होता जाता था ।

रानी—बड़ा धन है । मैं तो बापकों को देयते ही मनभ गई । अपनी स्त्री को भेज बट्ट कर लाते उसे लज्जा भी न आउं ।

चिन्ता—सुके काम रहे होंगे ।

रानी—सुम्हरे उदने चला था । मैंने भी कहा था, दवा तुमको ऐसी शिक्षा दगी कि वन्नमर याद करोगे । रामी को बुला लिया ।

चिन्ता—सरदार की बुद्धि को धन्य है ।

रामलीला

(१)



एक सुदृढ से रामलीला देखने नहीं गया। बदरों के भड़े चेहरे लगाए, आधी टाँगों का पाजामा और काला रंग का जँचा कुरता पहने प्रादमियों को दौडते, हू हू करते देखकर अब हँसी आती है, मजा नहीं आता। काशी की लीला जगद्विषात है।

सुना है लाग दूर-दूर से देखने आते हैं। मैं भी बटे शौक से गया। पर सुभे तो वहाँ की लीला और किसी वज्र देहात की लीला में फोटे अतर न दिखाई दिया। हाँ, रामनगर की लीला में कुछ साज सामान अच्छे हैं। राक्षसों और बदरों के चेहरे पीतल के हैं, गदाएँ भी पीतल की, कदाचित् वनवासी आताओं के सुकुट सच्चे काम के हों। लेकिन साज-सामान के सिवा वहाँ भी वही हू हू के सिवा और कुछ नहीं। फिर भी वहाँ प्रादमियों की भीड़ लगी रहती है।

लेकिन एक जमाना वर था, जब सुभे भी रामलीला में आनंद आता था। आनंद तो बहुत बलका-या शब्द है। वह आनंद इन्माट से कम न था। तंत्रोग-इण उन दिनों मेरे घर से बहुत थोड़ी दूर पर रामलीला का मैदान था, घोर जिस घर में लीला-राश्रों का रूप रंग भरा जाता था, वह तो मेरे घर से बिल्कुल मिला हुआ था। दो बजे दिन से रातो रात सगाहट होने लगती थी। मैं दोपहर ही से वहाँ जा बैठता था। जिस इलाहा से दोट-दोटर छोटे-छोटे काम आता, वह इन्माट से कम न था। पेशान होने भी नहीं जाता। एक बोटरी में राज

कुमारों का शृङ्गार होता था। उनकी देह में रामरज पीसकर पोनी जाती, मुँह पर पाउडर लगाया जाता और पाउडर के ऊपर लाल तरे नीले रंग की बुँदकियाँ लगाई जाती थीं। सारा माथा, भौहें, गाल, ठोड़ी बुँदकियों से रच उठती थीं। एक ही आदमी इस काम में कशल था। वही बारी बारी से तीनों पात्रों का शृंगार करता था। रंग की प्यालियों में पानी लाना, रामरज पीसना, पसा झलना मेरा काम था। जब इन तैयारियों के बाद विमान निकलता, तो उस पर रामचन्द्रजी के पीछे बैठकर मुझे जो उल्लास, जो गर्व, जो रोमांच होता था, वह अब लाट साहब के दरबार में कुरसी पर बैठकर भी नहीं होता। एक बार जब होम मैथर साहब ने व्यवस्थापक सभा में मेरे एक प्रस्ताव का अनुमोदन किया था, उस वक्त मुझे कुछ इसी तरह का उत्साह, गर्व और रोमांच हुआ था। हाँ, एक बार जब मेरा ज्येष्ठ पुत्र नाथय तहसीलदारी में नामनद हुआ, तब भी कुछ ऐसी ही तरंगें मन में उठी थीं। पर इनमें और उस बाल विह्वलता में बड़ा अंतर है। तब तो ऐसा मालूम होता था कि मैं स्वर्ग में बैठा हूँ।

निपाट नौका-लीला का दिन था। मैं दो चार लडकों के बटखों में आकर गुल्मी टटा खेलने लगा था। आज शृंगार खेलने न गया। विमान ही निहला, पर मैंने खेलना न छोड़ा। मुझे अपना दाव लेना था। अपना दाव छोटने के लिए उससे कहीं बटकर आत्मत्याग की जल्जला थी, जितनी मैं कर सकता था। अगर दाँव देना होता, तो मैं कब का भाग खड़ा होता। लेकिन पटाने में कुछ और ही बात शामिल है। नैर दाँव परा हुआ। अगर मैं चाहता तो धाँपती करके उस पाँच विपद और पटा सकता था, इसकी काफी गुत्ताइश थी, लेकिन तब टपटा स्पर्श न था। मैं सीधे नाचे की तरफ दौड़ा। विमान उल्टा पा पट्टे

चुका था। मैंने दूर से देखा, मल्लाह किशती लिए आ रहा है। दौड़ा, लेकिन आदमियों की भीड़ में दौड़ना कठिन था। आखिर जब मैं भीड़ हटाता, प्राण-पण से आगे बढ़ता घाट पर पहुँचा, तो निपाट अपनी नौका खोल चुका था। रामचन्द्र पर मेरी कितनी श्रद्धा थी। मैं अपने पाठ की चिन्ता न करके उन्हें पढ़ा दिया करता था, जिसमें वह फेल न हो जायँ। मुझसे रत्न ज्यादा होने पर भी वह नीची दृष्टि में पढ़ते थे। लेकिन बड़ी रामचन्द्र नौका पर बैठे इस तरह मुँह फेरे चले जाते थे, मानो मुझसे जान-पहचान ही नहीं। मकल में भी असल की कुठ न कुछ पूँआ ही जाती है। भर्कों पर जिनकी निगाह सदा ही तीखी रही है, वह मुझे क्यों धरते ? मैं विकल होकर उस घण्टे की भाँति कूदने लगा, जिसकी गरदन पर पहली बार जुआ खपटा गया हो। कभी लपक-कर माले की ओर जाता, कभी किसी सहायक की खोज में पीछे की तरफ दौड़ता। पर सब-के-सब अपनी धुन में मस्त थे, मेरी चीन्हा पुकार कितनी के धानों तक न पहुँची। तब से बड़ी-बड़ी दिपत्तियाँ गेलीं, पर घर समय जितना दुःख हुआ, इतना पिर कभी न हुआ।

मैंने निश्चय किया था कि जब रामचन्द्र से दूरी न थोड़ूँगा, न कभी आने की कोई चीज ही होगा लेकिन ज्यों ही माले को पार करके पर पुल की ओर से लौटे मैं दौड़कर दिमान पर चढ़ गया, चीन्हा प्येवा एक हुआ, मानो कोई बात ही न हुई थी।

(२)

रामलीला समाप्त हो गई थी। राजगद्दी होनेवाली थी। पर न-जाने क्यों देर हो रही थी। शायद चढ़ा काम बहुत हुआ था। रामचन्द्र की एक दिनों कोई बात भी न पूछता था। न तो घर जाने की हठी ही निहती थी न भोजन का प्रबंध ही होता था। चौधरी माहय के घर

मे एक सीधा कोई तीन बजे दिन को मिलता था। बाकी सारे दिन कोई पानी को भी न पूछता। लेकिन मेरी श्रद्धा अभी तक ज्यों-की-त्यों थी। मेरी दृष्टि में वह अब भी रामचन्द्र ही थे। घर पर मुझे पाने की जो चीज मिलती, वह लेकर रामचन्द्र को दे आता। उन्हें खिलाने में मुझे जितना आनन्द मिलता था, उतना आप खा जाने में कभी न मिलता। जोड़े मिठाई या फल पाते ही मैं वेतदाशा चौपाल की ओर दौड़ता। अगर रामचन्द्र वहाँ न मिलते, तो उन्हें चारों ओर तलाश करता, और जब तक वह पीज उन्हें न खिला देता, मुझे चैन न आता था।

पैर राजगढ़ी का दिन आया। रामलीला के मैदान में एक बडान्वा गान्धियाना ताना गया। उगली सूत्र लजावट की गई। नेण्याओं ने द भी आ पहुँचे। शाम को रामचन्द्र की सवारी निकली और प्रत्येक द्वार पर उदड़ी आगती उतारी गई। श्रद्धानुसार किसी ने सण्ड द्विपु, क्रिया ने पैमे। मेरे पिता पुनीत के आदमी थे, इसलिए उन्होंने पिता कुठ दिए की आरती उतारी। उस वक्त मुझे जितनी लज्जा आई, उगे था न ली कर सदता। मेरे पास अब वक्त समयोत न एक स्वया था। मेरा मामाजी दशहर के पहले घाय थे, और मुझे ११ दे गण थे। उन स्वयं का मैंन रण छोडा था। दशहर के दिन भी उस स्वयं न कर सडा। मेने तुग वद स्वया लाकर आरना की धाकी न डाद दिया। पिताजी मेरा धार कुपिन नेत्रों से देखकर रत गण। उन्होंने कुठ बहा तो नडा, लेकिन मुँह देवा बना दिया, तिमसे प्रकट होता था कि मेरी स्वयं प्रकृता न उनके राय में बडा लग गया। रात न टग यवन-यवने या परिश्रम पूरी हुई। आरती की धाकी स्वयों और पैयों न भरी हुई थी। टीक ना नही कर सदता, मगर अब देया अटुमान होता है हि ४ • मे स्वयों से कम न रे। खोजी सादर हनम तुड जादा की स्वयं दार मुक

घे । उन्हें इसकी बढी फ़िराब हुई कि किसी तरह कम-मेन्स २००) और बतल हो जायँ । और, इसकी सबसे अच्छी तरकीब इन्हें यही मालूम हुई कि वेश्याओं द्वारा महफ़िल में बसूली हो । जब लोग आकर बैठ जायँ, और महफ़िल का रंग जम जाय, तो आवादीजान रसिकजनों की कलाहियाँ पकट-पकटकर ऐसे हाव-भाव दिखावे कि लोग शरमाते-गरमाते भी कुछ-न-कुछ दे ही मरें । आवादीजान और चौधरी नाइब में मलाफ़ होने लगी । मैं सयोग से उन दोनों प्राणियों की बातें सुन रहा था । चौधरी ताहब ने सम्झा होगा यह लौंडा क्या मतलब समझेगा । पर यहाँ ईश्वर की दया से प्रकल के पुतले थे । मारी दास्ताग समझ में आती जाती थी ।

चौधरी—तुमने आवादीजान, यह तुम्हारी ज्यादाती है । हमारा और तुम्हारा कोई पहला लायका तो है नहीं । ईश्वर ने चाहा, तो यहाँ हमेशा तुम्हारा आत्म-जाना लगा रहेगा । प्रकल की चदा बहुत कम शाय, नहीं तो मैं तुमसे इतना दूसरार न करता ।

आवादी०—आप सुझसे भी जमींदारी पालें चलते हैं, क्यों ? अगर नहीं तुज़र की दाल न गलेगी । बाह ! सरए तो मैं बसूक करूँ । और मुँहों पर ताव भाप दें । कमाई का यह अच्छा टग निकाला है । दूत बजाई से तो दार्क भाप थोड़े दिनों में राजा हो जायेंगे । इसने सामने जमींदारी भक मारेंगी ! दूत, कज़ ही से एन चमला सोल दीजिए । खुदा की कसम, नालागल हो जाइएगा ।

चौधरी—हम तो दितरगी करती हो, और यहाँ हाफिया तग हो रहा है ।

चौधरी—आखिर तुम्हारी मंशा क्या है ?

आवादी०—जो कुछ चमूल करूँ, उसमें आधा मेरा और आधा आपका । लाइए हाथ मारिए ।

चौधरी—यही सही ।

आवादी०—अच्छा, तो पहले मेरे १०० गिन दीजिए । पीछे से आप अलसेठ करने आँगे ।

चौधरी—जाह, वह भी लोगी और दह भी ।

आवादी०—अच्छा ! तो क्या आप समझते थे कि अपनी उजरत छोड़ देगी ? वहाँ की आपकी रामझ ! मूँध, क्यों न हो । दीजाना बकाने प्रेश हगियार ।

चौधरी—तो क्या तुमने दोहरी फीस लेने की ठानी है ?

आवादी०—अगर आपका सौ दफे गरज हो, तो ! वरना मेरे १०० तो कहीं गए ही नहीं । मुझे क्या कुत्ते ने काटा है, जो लोगों की नेत्र में हाथ टाकती फिरँ ।

चौधरी की एक न चली । आवादी के सामने टवना पडा । नाच शुरू हुआ । आवादी तान बजा की शोच थीरत थी । एक तो कमबिन्द, श्वर दस हसीन । और, उसका अडाएँ तो दस राजश की थीं कि मेरी तरीकत जी मन्त दुई जाती थी । आदमियों को पदचानने का गुण भी उसमें कुछ कम न था । निम्नरे सामने बैठ गई, उससे कुछ न कुछ ले नी लिया पाँच रुपए से कम तो नायब ही किसी ने दिए हों । पिताजी के सामने भी बह जा देती । मैं मरे जस न गड गया । जब उसन उनहा इन्तरे पकडी, तब तो मैं मरम पडा । मुझे बर्कान या दि पिता समान हाथ मट्टक देते । और नायब दुन्कार भी दे । किंतु दस क्या तो रहा है ! इन्कर ! मेरी आँने बोका तो नहीं मार रही है ! पिताजी मुँठो में हँप

रहे हैं। ऐसी मृदु हँसी उनके चेहरे पर मैंने कभी नहीं देखी थी। उनकी आँखों से अनुराग टपका पड़ता था। उनका एक-एक रोम पुलकित हो रहा था। नगर ईश्वर ने मेरी लाज रख ली। वह देखो, उन्होंने धीरे से आधादी के कोमल हाथों से अपनी कलाई छुड़ा ली। अरे! यह फिर क्या हुआ। आधादी तो उनके गले में बाँहें डाले देती है। अथ की पिताजी जरूर उसे पीटेंगे। चुड़ैल को ज़रा भी शर्म नहीं।

एक महाशय ने मुसकिराकर कहा—यहाँ तुम्हारी दाल न गलेगी आधादीजान। घोर दरवाजा देखो।

घात तो इन महाशय ने मेरे मन की कधी, और बहुत ही उचित कधी, लेकिन न-जाने क्यों पिताजी ने उनकी घोर लुपित नेत्रों से देखा, और झुँझों पर ताव दिया। मुँह से तो वह कुछ न बोले, पर उसके मुख की आकृति चिल्लाकर सरोप शब्दों में कह रही थी—तू बनिया मुझे समझता क्या है? यहाँ ऐसे अचर पर जान तक निसार करने की तैयार है, एष की हकीकत ही क्या! तेरा जी चाहे याजमा ले। तुझसे दूरी रकम न दे पाऊँ, तो मुँह न दिखाऊँ! महान् घाश्चर्य! घोर अनर्थ! अरे जमीन, तू पट क्यों नहीं जाती? आकाश, तू फट क्यों नहीं पड़ता? अरे तुझे मौत क्यों नहीं आ जाती! पिताजी जेब में हाथ डाल रहे हैं। वह कोई चीज निकाली और सेठरी हो दिखाकर आधादीजान को दे राती। घाह! यह तो अगपनी है। चारों चार तालियाँ बजने लगीं। सरजी डरू बन गए। पिताजी ने मुँह की खाई, इसका विश्चय ने नहीं कर सकता। मैंने देवल इतना देखा कि पिताजी ने एक अगपनी निकाल कर आधादीजान को दी। उनकी आँखों से इन समय इतना गर्व युक्त आभास था, मानो उन्होंने हातिस की कद पर लान नारा हो। यही पिताजी तो है, जिन्होंने इन्ने आन्ती में धुँ टालने देकर मेरी और

एक तरह से देखा था, मानो मुझे फाड़ ही लायेंगे। मेरे डर परनीति व्यवहार से उनके रोव में फर्क जाता था, और हम साथ-साथ वृष्णि-वृत्तित निन्दित व्यापार पर वह गर्व शोभानन्द से झूले न समते थे।

शास्त्रादीजान ने एक मनोहर सुनवान के साथ पितानी को मारा लिया, और जागे बड़ी। राम सुझवे वहाँ न बैठा गया। मारे शर्म के मेरा मस्तक झुका जाता था। अगर मेरी भाँखो-देखी बात न होती, तो मुझे हम पर कभी पतवार न होता। मैं बालर जो कुछ देयता-सुनता था, उसकी रिपोर्ट शम्भा से जरूर करता था। पर हम मामले को मैंने गमे टिप्पणी रचना। मैं जानता था, उन्हें यह बात सुनकर बड़ा दुःख होगा।

रात भर माना होता रहा। तबले की धमक मेरे कानों में आ रही थी। जी चाहता था, चरघर देखूँ, पर साहज न होता था। मैं किसी को मुँह कैसे दिखाऊँगा? कहीं किसी ने मित्राजी का जिक्र ट्रेड दिया, तो मैं क्या करूँगा?

प्र न बाल रामचन्द्र की विदाई होनेवाली थी। मैं चारपाई से उठ ही आँसे मन्ता दुप्रा चौपाल की ओर जागा। उर रहा था कि कहीं रामचन्द्र चले न गए हों। पहुँचा, तो देखा, तापकों की सवारियाँ गाने को तैयार हैं। बीसों आदमी हजरत नाहमुँह बनाए उन्हें घेरे खड़े हैं। मैंने डाकी और आँख नक न उठाई। सीमा रामचन्द्र के पाव पहुँचा। लक्ष्मण और सीता बैठे रो रहे थे, और रामचन्द्र खड़े बाँधे पर लुटिया-टोर टाँचे उन्हें सम्मान रहे थे। मेरे मित्र बहा और कोठे न था। मैंने कृति स्वर से रामचन्द्र से पूछा—क्या तुम्हारी विदाई हो गई?

रामचन्द्र—हाँ, हो तो गई। हमारी विदाई हो क्या? चौपरी साहब ने कह दिया, जाओ, चले जानें हैं।

“क्या रुपए और कपडे नहीं मिले ?”

“अमी नहीं मिले । चौधरी ताहब कहते हैं, इस बात बचत में रुपए नहीं हैं । फिर आकर ले जाना ।”

“कुछ नहीं मिला ?”

“एक पैसा भी नहीं । कहते हैं, कुछ बचत नहीं हुई । मैंने लोचा था, कुछ रुपए मिल जायेंगे, तो पढने की किताबें ले लूँगा । सो कुछ न मिला । रात खर्च भी नहीं दिया । कहते हैं, कौन दूर है, पैदल चले जाओ ।”

मुझे ऐसा क्रोध आया कि चलकर चौधरी को नूप आठे हाथों लूँ । वेश्याओं के लिए रुपए, तबारियाँ सब कुछ, पर देवारे रामचन्द्र और हमके माधियों के लिए कुछ भी नहीं ! जिन लोगों ने रात को आधादी-जान पर दण्ड दे, धीस-धीस रुपए न्योछावर किए थे, उनके पास क्या उनके लिए दो-दो चार-चार आने पैसे भी नहीं हैं ? पिताजी ने भी तो आधादीजान को एक अशर्की दी थी । देखूँ, उनके नाम पर क्या देते हैं । मैं दीजा हुआ पिताजा के पास गया । वह कहीं तकनीस पर जाने को तैयार खड़े थे । मुझे देखकर बोले—“कहाँ घूम रहे हो ? पढने के वक्त तुम्हें घूमने की सुभाती है ?”

जैसे बहटा—“गया जा चौवाल । रामचन्द्र दिदा हो रहे थे । उन्हें चौधरी ताहब ने कुछ नहीं दिया ।”

“तो तुम्हें इमदी क्या फ़िक्र पडी है ?

“वह आँगे कैसे ? पास रात-खर्च भी तो नहीं है ।”

“क्या तुम्हें खर्च भी नहीं दिया ? वह चौधरी ताहब की देह-साही है ।”

“आए अगर तु दे दें, तो मैं उन्हें दे दूँ । इतने में मायद वह पर रहेंगे जाई ।”

पिताजी ने तीव्र दृष्टि से देखकर कहा—“जाओ, अपनी किताब देखो। मेरे पास रूप नहीं है।”

यह कहकर वह घोड़े पर सवार हो गए। उनी दिन न पिता से मेरी श्रद्धा उठ गई। मैंने फिर कभी उनकी उईट डपट की परवा की। मेरा दिरु कहता, आपलें मुझे उपदेश देने का कोई अधिकार है। मुझे उनकी मूरत से चिट हो गई। वह जो कहते, मैं ठीक रहता करता। यद्यपि इससे मेरी ही हानि हुई, लेकिन मेरा मत उस समय प्रिलवकारी प्रिचारों से भरा हुआ था।

मेरे पास दो श्राने पैसे पडे हुए थे। मैंने पैसे उठा लिए, और गगमाने गगमाने रामचंद्र को दे दिए। उन पैसों का देकर रामचंद्र निर्या हर्ष हुआ, वह मेरे लिए प्रशातीत था। दूट पडे, माना का जाना मिल गया।

वही दो श्राने पैसे लकर ताना मूतिया रिदा हुई। केरु मन्हे मार करने के धारु तद पहुँचाने श्राया।

उन्हें रिदा करके लाया, ता मेरा धाँपें सबल था, पर हृदय मे उन्डा हुआ था।

मन्त्र

द्वितीय लीलाधर चौबे की जयान में जाहू था । जिस वक्त वह मंच पर खड़े होकर अपनी वाणी की सुधावृष्टि करने लगते थे, श्रोताओं की आत्माएँ तृप्त हो जाती थीं, लोगों पर अनुराग का नशा छा जाता था । चौबेजी के व्याख्यानोँ में तत्व तो बहुत कम होता था, शब्द-योजना भी बहुत सुन्दर न होती थी, लेकिन उनकी शैली इतनी आकषक, रजक और मर्मस्पर्शी थी कि एक ही व्याख्यान को बार-बार दुहराने पर भी उसका असर कम न होता, बल्कि घन की चोटों की भाँति और भी प्रभावोत्पादक हो जाता था । हमें तो विश्वास नहीं आता, किन्तु सुननेवाले कहते हैं, उन्होंने कबल एक व्याख्यान रट रखा है, और उसी को षट्शतशः प्रत्येक सभा में एक नए अन्दाज से दुहराया करते हैं । जातीय गौरव-गान उनके व्याख्यानोँ का प्रधान गुण था, मंच पर आते ही भारत के प्राचीन गौरव और पूर्वजोँ की अमर-कीर्ति का राग छेड़का सभा को सुख कर देते थे । यथा—

सज्जनो ! हमारी अक्षोगति की कथा सुनकर किसकी आँखों से ध्रुव-धारा न निकल पड़ेगी ? हमें अपने प्राचीन गौरव को पाद करके संदेह होने लगता है कि हम घरी है, या ददल गए । जिसने कल सिंह से पन्जाब का दह साज कूटे को देखकर दिल खोज रहा है । इस पतन की माँ कोई सीमा है । दूर क्यों जाहू, महाराज चन्द्रगुप्त के समय की ही हो लाजिए । तुमल का सुविश इतिहासकार लिखता है कि उस जमाने में दर्रा दर पर हाहे न हाहे जाते थे, खोरी दर्री सुन्ने में न आती थी,

व्यभिचार का नाम निशान न था, दस्तावेजों का आधिकार ही न हुआ था, पुर्जों पर लाखों का लेन-देन हो जाता था, न्याय-पद पर बैठे हुए कर्मचारी मक्खियाँ मारा करते थे। मजदूरों, उन दिनों कोई आदमी जवान न मरता था (तालियाँ)। हाँ, उन दिनों कोई आदमी जवान न मरता था, बाप के सामने बेटे का अवमान हो जाना एक अश्रुत पूर्ण—एक भयम्भय घटना—थी। आज ऐसे कितने माता पिता हैं, जिनके कलेजे पर जवान बेटों का दाग न हो? वह भारत नहीं रहा, भारत गारत हो गया !

यही चौबेजी की शैली थी। वह वर्तमान की अधोगति और दुर्दशा तथा भूत की समृद्धि और सुदृग्ता का राग अलाप कर लोगों में जातीय स्वाभिमान को जाग्रत कर देते थे। हमी सिद्धि की बंदोबस्त उनकी नेताओं में गणना होती थी। विशेषतः हिन्दू-सभा के तो वह कर्णधार ही समझे जाते थे। हिन्दू-सभा के उपासकों में कोई ऐसा उत्साही, ऐसा दक्ष, ऐसा नीति-चतुर दूसरा न था। यों कहिए कि सभा के लिए उन्होंने अपना जीवन ही समर्पण कर दिया था। धन तो उनके पास न था, कम-से कम लोगों का विचार यही था, लेकिन साहस, धैर्य और बुद्धि जैसे अमूल्य रत्न उनके पास अवश्य थे, और ये सभी सभा का अर्पण थे। 'शुद्धि' के तो मानों षड् प्राण ही थे। हिंदू जाति का उन्नास और पतन, जीवन और मरण उनके विचार में हमी प्रश्न पर अव्यक्त था। शुद्धि के सिवा अन्य हिंदू जाति के पुनर्जीवन का और कार्य उपाय न था। जाति की समस्त नैतिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक बीमारियों की उवा हमी आन्दोलन की सफलता में समाहित थी, और वह तन-मन से इसका उपयोग किया करते थे। उन्हें बसूट काने में चौबेजी सिद्धहस्त थे। उँवरा ने उन्हें वह 'गुरु' बना दिया

था कि पत्थर से भी तेल निकाल सकते थे। कंजूसों को तो वह ऐसा बल्ले छुरे से मूढते थे कि उन महाशयों को सदा के लिए शिक्षा मिल जाती थी। हम विषय में पंडितजी साम, दाम, दंड और भेद, चारों नीतियों से काम लेते थे, यहाँ तक कि राष्ट्र हित के लिए डाका और चोरी को भी क्षम्य समझते थे।

(२)

गरमी के दिन थे। लीलाधरजी किसी शीतल पार्वत्यप्रदेश को जाने की तैयारियाँ कर रहे थे कि सैर-की सैर हो जायगी, और यन पढा, तो कुछ चंदा भी वसूल कर लावेंगे। इनको जब भ्रमण की इच्छा होती, तो मित्रों के साथ एक डेपुटेशन के रूप में निकल खड़े होते। अगर एक हजार रुपये वसूल करके वह इसका आधा सैर-सगटे में खर्च भी कर दें, तो किसी की क्या हानि? हिंदू-मभा को तो कुछ-न-कुछ मिल ही जाता था। पट्ट न ब्योग करते, तो हतना भी तो न मिलता। पंडितजी ने श्रम की सपरिवार जाने का निश्चय किया था। जब से 'शुद्धि' का आविर्भाव हुआ था, उनकी आर्थिक दशा, जो पहले बहुत शोचनीय रहती थी, बहुत कुछ संभल गई थी।

लेकिन जाति के उपामकों का ऐसा सौभाग्य कहाँ कि शांति निवास का आनंद उठा सकें! उनका तो जन्म ही मारे-मारे फिरने के लिए होता था। खबर प्यार कि मद्रास प्रांत में तबलीगवालों ने तृफ़ान मचा रक्खा है। हिंदुओं के गाँव के-गाँव मुसलमान होते जाते हैं। मुत्सद्दों ने बड़े शोष से तबलीग का काम शुरू किया है। अगर हिंदू सभा ने इस प्रवाद को रोक्ने की आयोजना न की, तो सारा प्रांत हिंदुओं से शून्य हो जायगा - दिनी गिलाधारी ही कूरत न नजर आवेगी।

हिंदू सभा में खबरों की मसखरें। कुरंत एक विशेष अधिदेशन हुआ

और नेताओं के सामने यह समस्या उपस्थित की गई। बहुत मोच विचार के बाद निश्चय हुआ कि चौबेजी पर इस कार्य का भार रखा जाय। उनसे प्रार्थना की जाय कि वह तुरंत मदरास चले जायँ, और धर्म-विमुक्त बंधुओं का उद्धार करें। कहने ही की देर थी। चौबेजी तो हिंदू जाति की सेवा के लिए अपने को अर्पण ही कर चुके थे, पर्वत यात्रा का विचार रोक दिया, और मदरास जाने को तैयार हो गए। हिंदू-सभा के मंत्री ने अगों में आँसू भरकर उनसे विनय की कि महाराज, यह बीड़ा आप ही उठा सकते हैं। आप ही को परमात्मा ने इतनी सामर्थ्य दी है। आपके पिता ऐसा कोई दूसरा मनुष्य भारतवर्ष में नहीं है, जो इस घोर विपत्ति में काम आये। जाति की दीन हीन दशा पर दया कीजिए। चौबेजी इस प्रार्थना को अस्वीकार न कर सके। फौरन सेवकों की एक मंडली बनी, और पंडितजी के नेतृत्व में रवाना हुई। हिंदू-सभा ने उसे बड़ी धूम से विदाई का मोन दिया। एक उदार रईस ने चौबेजी को एक थैली भेंट की, और रेन्वे-स्टेशन पर हजारों आदमी उन्हें विदा करने आए।

यात्रा का वृत्तान्त लिखने की जरूरत नहीं। हर एक बड़े स्टेशन पर सेवकों का सम्मानपूर्ण स्वागत हुआ। कई जगह थैलियाँ मिलीं। रत्नाम की रियासत ने एक शामियाना भेंट किया। बड़ोदा ने एक मोटर दी कि सेवकों को पैदल चलने का कष्ट न उठाना पड़े, यहाँ तक कि मदरास पहुँचने-पहुँचने सेवा दल के पास एक माफक रास के अतिरिक्त जरूरत का कितनी ही चीजें जमा हो गईं। वहाँ आवादी से दूर, एक मुठे हुए मैदान में हिंदू सभा का पटाव पड़ा। शामियाने पर राष्ट्रीय झंडा लहराने लगा। सेवकों न अपनी अपनी थैलियाँ निकालीं, स्थानीय वस्तुओं ने दावत के सामान भेजे, गावदियाँ पक गईं। चार्गे और पैसा चकल पड़ने लगे, माना किसी रात का बैप है।

(३)

रात के आठ घंटे थे। अछूतों की एक बस्ती के समीप, सेवक-दल का कैंप गैस के प्रकाश से जगमगा रहा था। कई हजार आदमियों का जमाव था, जिनमें अधिकांश अछूत ही थे। उनके लिए अलग टाट बिछा दिए गए थे। ऊँचे वर्ण के हिन्दू कालीनों पर बैठे हुए थे। पंडित लीलाधर का धुआंधार व्याख्यान हो रहा था—‘तुम वन्हीं ऋषियों की सतान हो, जो आकाश को नीचे एक नई सृष्टि की रचना कर सकने थे, जिनके न्याय, बुद्धि और विचार शक्ति के नामने आज तारा सत्तार सिर झुका रहा है—’

सहसा एक बूढ़े अछूत ने उठकर पूछा—हम लोग भी वन्हीं ऋषियों की सतान हैं ?

लीलाधर—निस्तब्ध। तुम्हारी धमकियों में भी वन्हीं ऋषियों का रक्त दाँड रहा है और, यद्यपि आज का निर्दयी, कठोर, विचारहीन, सङ्कचित हिन्दू-समाज तुम्हें अवहेलना की दृष्टि से देख रहा है, तथापि तुम किसी हिन्दू से नीच नहीं हो, चाहे वह अपने को कितना ही ऊँचा समझता हो।

दूटा—तुम्हारी सभा हम लोगों की सुध क्यों नहीं लेती ?

लीलाधर—हिन्दू-सभा का जन्म अभी थोड़े ही दिन हुए, दुघा है, और हम परहरकाल में उसने जितने काम किए हैं, उन पर उसे अभिमान हो सकती है। हिन्दू जाति शताब्दियों के बाद गहरी नींद से चौकी है, और अब वह समय निकट है, जब भारतवर्ष में कोई हिन्दू किसी हिन्दू को नीचे न समझेगा, जब सब एक दूसरे को भाई समझेंगे। श्रीरामचंद्र के निपाट को छाती से लगाया था, राहरी के लूटे देर खाए थे

दूटा—आए जब वन्हीं महात्माओं की सतान हैं, तो फिर ऊँच नीच में क्यों रहना नैद मानते हैं ?

लीलाधर—इसलिए कि हम पतित हो गए हैं—अज्ञान में पड़कर उन महात्माओं को भूल गए हैं।

बूढ़ा—अब तो आपकी निद्रा दूटी है, हमारे साथ भोजन करोगे ?

लीलाधर—मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

बूढ़ा—मेरे लडके से अपनी कन्या का विवाह कीजिएगा ?

लीलाधर—जब तक तुम्हारे जन्म-मस्कार न बदल जायँ, जब तक तुम्हारे आहार-व्यवहार में परिवर्तन न हो जाय, हम तुमसे विवाह का संबंध नहीं कर सकते। मांस खाना छोड़ो, मदिरा पीना छोड़ो, शिक्षा ग्रहण करो, तभी तुम उच्च वर्ण के हिन्दुओं में मिल सकते हो।

बूढ़ा—हम कितने ही ऐसे कुलीन ब्राह्मणों को जानते हैं, जो रात दिन नशे में डूबे रहते हैं, मांस के बिना बीर नहीं उठाने, बीर कितने ही ऐसे हैं, जो एक अक्षर भी नहीं पढ़े हैं, पर आपको उनके साथ भोजन करने देयता है। उनसे विवाह संबंध करने में आपकी क्या निवृत्ति न होगा। जब आप खुद अज्ञान में पड़े हुए हैं, तो हमारा उद्धार कैसे कर सकते हैं ? आपका हृदय अभी तक अभिमान से भरा हुआ है। जाइए, अभी कुछ दिन और अपनी आत्मा का सुधार कीजिए। हमारा उद्धार आपके लिए न होगा। हिन्दु-समाज में रहकर हमारे मांसे म नोचना का कलक न मिटेगा। हम कितने ही विद्वान, कितने ही आचार्य बन्धु हो जायँ, आप हमें यों ही नीच समझते रहते। हिन्दुओं की आत्मा मर गई है, और उसका स्थान अहंकार ने ले लिया है। हम अब उस देवता की शरण जा रहे हैं, जिसके माननेवाले हमसे गले मिलने की शान ही लेयाए हैं। वे यह नहीं कहते कि तुम अपने सम्भार अलग कर आओ। हम अन्ते हैं या न, वे इसी दुःख में हमें अपने पास बुला रहे

हैं। आप अगर ऊँचे हैं, तो ऊँचे बने रहिए। हमें उड़ना नहीं आता। हम उन लोगों के साथ रहेंगे, जिनके साथ हमें उड़ना न पड़ेगा।

लीलाधर—एक ऋषि-संतान के मुँह से ऐसी बात सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है। वर्ण-भेद तो ऋषियों ही का किया हुआ है। उसे तुम कैसे मिटा सकते हो ?

बृहदा—ऋषियों को मत बदनाम कीजिए। यह सब पाखण्ड आप लोगों का रचा हुआ है। आप कहते हैं, तुम मदिरा पीते हो, लेकिन आप मदिरा पीनेवालों की जूतियाँ चाटते हैं। आप हमसे मांस खाने के कारण घिनाते हैं, लेकिन आप गो मांस खानेवालों के सामने नाक रगड़ते हैं। इसीलिए न कि वे आपसे बलवान् हैं ? हम भी आज राजा हो जायें, तो आप हमारे सामने हाथ बाँधे खड़े होंगे। आपके धर्म में वहाँ ऊँचा है, जो बलवान् है, वही नीच है, जो निर्बल है। यही आपका धर्म है ?

यह कहकर बृहदा वहाँ से चला गया, और उसके साथ ही और लोग भी उठ पड़े हुए। केवल चौदेजी और उनके दलवाले मंच पर रह गए, मानो गान समाप्त हो जाने के बाद उसकी प्रतिध्वनि वायु में गूँज रही हो।

(४)

तल्लीगवालों ने जब से चौदेजी के खाने की खबर सुनी थी, इस विश्वास से थे कि किसी उपाय से इन सबको यहाँ से दूर करना चाहिए। चौदेजी का नाम दूर दूर तक प्रसिद्ध था। जानते थे, यह यहाँ जन्म गया, तो हमारी सारी बी-बर्बाद भिन्नत वर्ध हो जायगी। हमारे बदन यहाँ जन्मने न पाएँ। मुदराजों ने उपाय सोचना शुरू किया। बहुत दाद-दियाद, पुजत धोए दलील के बाद निश्चय हुआ कि इस कास्त्रि को उ-र कर दिया जाय। ऐसा सदास लूटने के लिए आठमियों की बरा

कमी ? उसके लिए तो जज्ञत का दरवाजा खुल जायगा, हूँ उसकी यलाएँ लेंगी, फरिश्ते उसके कदमों की छाक का सुरमा बनाएँगे, रसूल उसके सर पर बरकत का हाथ रखेंगे, मुदावंद करीम उसे खं ने से लगाएँगे और कहेंगे—तू मेरा प्यारा दोस्त है। दो हट्टे-कट्टे जवानों ने सुरंत बीड़ा उठा लिया।

रात के दम यज्ञ गए थे। हिन्दू सभा के कैंप में सजाया था। केवल चौबेजी अपनी राखटी में बैठे हिन्दू-सभा के मंत्री को पत्र लिख रहे थे— यहाँ मजमे यती आवश्यकता धन की है। रुपया, रुपया, रुपया ! जितना भेज सकें, भेजिए। डेपुटेशन भेजकर घसूल कीजिए, मोटे मन्त्रजनों की जेब टयोलिए, भिक्षा माँगिए। बिना धन के इन अभागों का उद्धार न होगा। जब तक कोई पाठशाला न खुले, कोई चिकित्सालय न स्थापित हो, कोई साधनालय न हो, इन्हें कैसे विश्वास आवेगा कि हिन्दू सभा एक ही हितचिन्तक है। तबलीगवाले जितना गर्च कर रहे हैं, उमदा आवा भी मुकें मिल जाय, तो हिन्दू-धर्म की पताका फडराने लग। केवल ध्यायानों से काम न चलेगा। जमीनों से कोई निदा नहीं सकता।

सहसा किसी की आहट पाकर वह चौंक पड़े। आँखें उपा उठाईं, नो देखा, दो आदमी सामने खड़े हैं। पंडितजी ने शक्ति होकर पूछा— तुम कौन हो, क्या काम है ?

उत्तर मिला—हम इजगर्टेल के फरिश्ते हैं। तुम्हारी रुढ़ उद्यम करने आए हैं। इतरत इजगर्टेल ने तुम्हें याद दिया है।

पंडितजी यों बहून ही बरियुष्ट पुष्प थे, उन दोनों की एक धाँसे में गिरा सकते थे। प्रातः का तीन पाव मोड़नभाग और दो सर दुब हा लज्जा करत थे। दापडर के समय पाव-भर धो पाठ में खाने, सीमा पना दुबिवा भग मानने, जिसे सेर-जग मक्याई और आचयेर आडाम मिला

रहती। रात को बटकर व्यालू करते, क्योंकि प्रातःकाल तक फिर कुछ न खाते थे। हम पर तुरा यह कि पैदल पग-भर भी न चलते थे। पालकी मिले, तो पूछना ही क्या, जैसे घर का पलंग बड़ा जा रहा हो। कुछ न हो, तो इफ़ा तो था ही, यद्यपि काशी में दो ही चार इक्केवाले ऐसे थे, जो उन्हें देखकर कह न दें कि "इफ़ा खाली नहीं है।" ऐसा मनुष्य नर्म अखाड़े में पट पढकर ऊपरवाले पहलवान को थका सकता था, जुस्ती और फुर्ती के अवसर पर तो वह रेत पर निकला हुआ कलुआ था।

पटितजी ने एक द्वार कनस्त्रियों से दरवाजे की तरफ देखा। भागने का कोई मौका न था। तब वनमें साहस का संचार हुआ। भय की पराकाष्ठा ही साहस है। अपने सोंटे की तरफ हाथ बढ़ाया, और गरनकर बोले—निकल जाओ यहाँ से . ।

दात मुँह से पूरी न निकली थी कि लाठियों का वार पड़ा। पटितजी मृच्छित टोकर गिर पड़े। शत्रुओं ने समीप आकर देखा, जीवन का कोई लक्षण न था। समझ गए, काम तमाम हो गया। लूटने का तो दिवार न था, पर जब कोई पूछनेवाला न हो, तो हाथ बढ़ाने में क्या दर्ज ? जो कुछ हाथ लगा, ले-देकर चरुते हुए।

(५)

प्रातः बल हटा भी उधर से निकला, तो सजाटा छाया हुआ था—न राहमी न आदसजाद, छोलदारियाँ भी गायब ! चकराया, यह माजरा क्या है ! रात ही-भर में अलादीन के मठल की तरह सब कुछ गायब हो गया। इन महात्माओं में से एक भी नजर नहीं आता, जो प्रातः काल मोहभोग हटाते और सध्या समय भग घोटने दिखाई देते थे। जरा और हम प जाकर पटित लीलाधर की रादटी में झाँका, तो कलेजा सब से हो गया। पटितजी जमीन पर सुर्दे की तरह पड़े हुए थे। मुँह पर

मन्त्रियों भिन्नक रही थीं। सिर के बालों में रक्त ऐसा जम गया था जैसे किसी चित्रकार के ब्रश में रंग। सारे कपड़े लहलुहान हो रहे थे। समझ गया, पंडितजी के साथियों ने उन्हें मारकर अपनी राह ली। सदसा पंडितजी के मुँह से कराहने की आवाज निकली। अभी जान बाकी थी। बूढ़ा तुरन्त दौड़ा हुआ गाँव में गया, खीर कई आश्रमियों को लाकर पंडितजी को अपने घर उठवा ले गया।

मरहम-पट्टी होने लगी। बूढ़ा दिन-के-दिन और रात-की रात पंडितजी के पास बैठा रहता। उसके घरवाले उनकी सुश्रूषा में लगे रहते। गाँव वाले भी यथाशक्ति सहायता करते। इस बेचारे का यहाँ कौन अपना बैठा हुआ है? अपने हैं तो हम, बेगाने हैं तो हम। हमारा ही बटार के लिए तो बेचारा यहाँ आया था, नहीं तो यहाँ उसे क्या लेना था? कई बार पंडितजी अपने घर पर बीमार पड़ चुके थे। पर उनके घरवालों ने इतनी तन्मयता से कभी उनकी तीमारदारी न की थी। सारा घर, खीर घर ही नहीं, सारा गाँव उनका गुलाम बना हुआ था। अतिथि सेवा उनके वर्ग का एक अंग थी। सभ्य स्वार्थ ने अभी उस भाव का गला नहीं काटा था। पाँच का मंत्र जाननेवाला देखाती अथ भी मान-गम को अंगीरे सेवान्त्रय गाँव में मंत्र भाडने के लिए दस पाँच कोष पैदा दौड़ना हुआ चला जाता है। उसे डकल फोव और सवारी की जरूरत नहीं होती। बूढ़ा मल मूत्र तक अपने हाथों उठाकर फेंकता, पंडितजी की घुटकियाँ सुनना, सारे गाँव में दूध माँगकर उन्हें पिलाना, पर उसकी व्योमिषि कमी नहीं होती। अगर उसके कहीं बच्चे जान पर घरवाले लापरवाही करने, तो आकर मरदा टाटता।

जहाँने सर के बाँध पण्डितजी अपने दिाने लगे, और नय पन्डे जान हुआ दि दूव लोंगे ने मेरे माथ किनना उपकार दिया है। दुर्गा लाग

का काम था कि मुझे मौत के मुँह से निकाला, नहीं तो मरने में क्या कसर रह गई थी ? उन्हें अनुभव हुआ कि मैं जिन लोगों को नीच समझता था, और जिनके उद्धार का धोड़ा उठाकर आया था, वे मुझसे कहीं ऊँचे हैं। इस परिस्थिति में मैं कदाचित् रोगी को किसी अस्पताल भेजकर ही अपनी कर्तव्यनिष्ठा पर गर्व करता, समझता, मैंने दधीचि और हरिश्चंद्र का मुख टज्जल कर दिया। उनके रोएँ-रोएँ से इन देव-तुल्य प्राणियों के प्रति आशीर्वाद निकलने लगा।

(६)

तीन महीने गुजर गए। न तो हिन्दू-सभा ने पंडितजी की खबर ली, और न घरवालों ने। सभा के मुख पत्र में उनकी मृत्यु पर आँसू पड़ाए गए, उनके कामों की प्रशंसा की गई, और उनका स्मारक बनाने के लिए धंदा खोल दिया गया। घरवाले भी रो-पीटकर बैठ रहे।

उधर पंडितजी दूध और घी खाकर चोक-चौबंद हो गए। चेहरे पर पून भी सुर्खी दौड़ गई, देह भर आई। देहात के जल-वायु ने वह काम कर दिखाया, जो कभी मलाई और मक्खन से न हुआ था। पहले की तरह तैयार हो गए, पर फुर्ती और चुस्ती दुगनी हो गई। मोटाई का आलस्य अब नाम की भी न था। उनमें एक नए जीवन का संचार हो गया।

जारा शुरू हो गया था। पंडितजी घर लौटने की तैयारियाँ कर रहे थे। इतने में प्लेग का आक्रमण हुए, और गाँव के तीन आदमी बीमार हो गए। इला चौधरी भी वन्हीं में था। घरवाले इन रोगियों को छोड़ कर भाग खड़े हुए। वहाँ का दस्तूर था कि जिन बीमारियों को वे लोग देही और समझते थे इनके रोगियों को छोड़कर चले जाते थे। उन्हें अपना देवताओं से चैर लेना था, और देवताओं से चैर

करके कहाँ जाते ? जिस प्राणी को देवताओं ने चुना लिया, उसे भला ने उसके हाथों से छीनने का माएस कैसे करने ? पंडितजी को भी लोगों ने साथ ले जाना चाहा, किन्तु पंडितजी न गए। उन्होंने गाँव में रहकर रोगियों की रक्षा करने का निश्चय किया। जिस प्राणी ने उन्हें मौत के पजे से चुनाया था, उसे हम दशा में डोढ़कर वह कैसे जाते ? उपकार ने उनकी आत्मा को जगा दिया था। बड़े चौधरी ने तीसरे दिन होठ आने पर जब उन्हें अपने पास सभे देखा, तो बोला—महाराज, तुम यहाँ क्यों आ गए ? मेरे लिए देवताओं का हुकम आ गया है। अब मैं किसी तरह नहीं रुक सकता। तुम क्यों अपनी जान जोखिम में डालते हो ? मुझ पर दया करो, चले जाओ।

लेखित पंडितजी पर कोई अमर न हुआ। वह यारी यारी से तीनों रोगियों के पास जाते, और कभी उनकी गिल्टियाँ सँकते, कभी उन्हें पुराणों की कथाएँ सुनाते। वरों में नाज, बरतन आदि सब जों के ल्यों रखते हुए थे। पंडितजी पय बना-बना कर रोगियों को गिराते। रात को जब रोगी भी सो जाते, और सारा गाँव भाय भाय करने लगता, तो पंडितजी को भाति भाति के अथहर जतु दिखाने देते। उनके कहेने में घटकर होने लगती। लेखित वहाँ से टरने का नाम न लेते। अर्थात् निश्चय कर लिया था कि या तो उन लोगों को रक्षा ही होगी, या इन पर अपने को बलिदान ही कर देगा।

जब तीन दिन सँक बँव करने पर भी रोगियों की श्वास्त न सँभरी, तो पंडितजी को बड़ी चिन्ना हुई। अगर वहाँ से २० मील पर गाँव। रोज का कहीं पना नहीं, सन्ना आरु और साथी छोड़े नहीं। अगर यह सब दिखने रोगियों की न जाने गया होगा हो। प्रचार के सँकट में पड़े। अतः को बीये दिन, पहर रात रहे, वह अनेके ही श्वास्त का सब

दिए, और दस घड़ते-बजते वहाँ जा पहुँचे। अस्पताल से दवा लेने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पडा। गाँवारों से अस्पतालवाले दवाओं का मनमाना दाम वसूल किया करते थे। पण्डितजी को मुफ्त क्यों देने लगे? डाक्टर के मुँही ने कहा—दवा तैयार नहीं है।

पण्डितजी ने गिढगिढाकर कहा—सरकार, बड़ी दूर से आया हूँ। कई आदमी बीमार पड़े हैं। दवा न मिलेगी, तो सब मर जायँगे।

मुँही ने घिगढकर कहा—क्यों सिर खाए जाते हो? कह तो दिया, दवा तैयार नहीं है, और न इतनी जल्द तैयार हो सकती है।

पण्डितजी अत्यंत दीन भाव से बोले—सरकार, ब्राह्मण हूँ, आपके पाल-बच्चों को भगवान् चिरजीवी करें, दया कीजिए। आपका अकृपाल पमवता रहे।

रिश्वती कर्मचारियों में दया कहाँ? वे तो रूप के गुलाम हैं। ज्यों उ्यों पण्डितजी उसकी खुशामद करते थे, वह और भी झुल्लाता था अपने जीवन में पण्डितजी ने कभी इतनी दीनता न प्रकट की थी। उनके पास इस दस्त एक धेला भी न था। अगर वह जानते कि दवा मिलने में इतनी दिक्कत होगी, तो गाँववालों से ही कुछ माँग-जाँचकर लाए होते। चंपारे हतबुद्धि-से खडे सोच रहे थे कि अब क्या करमा चाहिए? सहसा डाक्टर साहब स्वयं घंगले से निकल आए। पण्डितजी लपककर उनके पैरों पर गिर पड़े, और करण स्वर में बोले—दीन-बंधु, मेरे घर के तीन आदमी साइन में पड़े हुए हैं। बटा गरीब हूँ सरकार, कोई दवा मिले।

डाक्टर साहब के पास ऐसे गरीब लोग नित्य आया करते थे। उनके चारों पर किसी का गिर पटना, उनके सामने पड़े हुए आर्त-नाद करना, हठके लिए कुछ मर्हं बातें न थीं। अगर इस तरह वह दया करने लगते, तो दवा ही-अर को होते यह टाट टाट कहाँ से निमता? मगर दिल के

चाहे कि-ने ही बुरे तों, बातें नीठी नीठी कम्ते थे पैर हटाकर जोले
रोगी कहाँ है ?

पण्डित—सरकार, वे तो घर पर हैं । इतनी दूर कैर लाता ?

डाक्टर—रोगी घर हैं और तुम दवा लेने आया है । किना मने
का बात है । रोगी को देने बिना कैसे दवा दे सकता है ?

पण्डितजी को अपनी भूल मालूम हुई । वास्तव में बिना रोगी को
देने रोग की पहचान कैसे हो सकती है । लेकिन तीन-तीन रोगियों को
इतनी दूर लाना आसान न था । अगर गाँववाले उनकी सहायता करने,
तो टोलियों का प्रबंध हो सकता था । पर वहाँ तो सब कुछ आने ही
बने पर करता था गाँववालों से इगमें सहायता मिलने की कोई आशा
न थी । सहायता की कौन कहे, वे तो उनके शत्रु हो रहे थे । उन्हें भय
होना था कि यह दृष्ट देवताओं से बैर बडाकर हम लोगों पर न जाने क्या
विपत्ति लावेगा । अगर वाई दुमरा आदमी होता तो वह उसे सब का
मार चुके होते । पण्डितजी से उन्हें प्रेम हो गया था, इसीलिए आ
दिया था ?

वह उवाच मुनहर पण्डितजी को कुछ घोलने का साहस तो न होता
था, पर कल्पना मन्वृत करने वाले—सरकार, अब कुछ नहीं हो सकता ?

डक्टर—असम्भव से दवा नहीं मिल सकता । हम अपने पास से
दान लेकर दवा दे सकता है ।

पण्डित—यह दवा चिनन की रोगी सरकार ?

डाक्टर साहब ने दवा का दान १०) बनवाया, जोर यह भी था कि
इन दवा से जिनका लाभ होगा, उनका असम्भव ही दवा से नहीं हो
सकता । बोले—दवाँ पुराना दवाँ रहता रहता है । सरासरी लोग आया
है, दवाँ ले जाता है विपदा जाता होता है, जाता है, विपदा सरासरी

होता है, मरता है, हमसे कुछ मतलब नहीं। हम तुमको जो दवा देगा, वह सच्चा दवा होगा।

दस रुपए ! इस समय पण्डितजी को दस रुपए दस लाख जान पड़े। इतने रुपए वह एक दिन में भग-बूटी में उड़ा दिया करते थे। पर इस समय तो धेले-धेले को मुहताज थे। किसी से उधार मिलने की आशा कर्ता। हाँ, सम्भव है, भिक्षा माँगने से कुछ मिल जाय। लेकिन इतनी जल्द दस रुपए किसी उपाय से भी न मिल सकते थे। आधघंटे तक वह हमी बंधे-बुन में खड़े रहे। भिक्षा के सिवा दूसरा कोई उपाय न सूझता था, और भिक्षा उन्होंने कभी माँगी न थी। वह चन्दे जमा घर चुके थे, एक-एक घर में हजारों घसूल कर लेते थे, पर वह दूसरी दात थी। धर्म के रक्षक, जाति के सेवक, और दलितों के उद्धारक बनकर चन्दा लेने में एक गौरव था, चन्दा लेकर वह देनेवालों पर एहसान करते थे। पर यहाँ तो भिखारियों की भाँति हाथ फैलाना, गिड़गिड़ाना और पाटकारें लगनी पड़ेंगी। कोई कहेगा, इतने मोटे-ताजे तो हो, मिहनत क्यों नहीं करते, तुम्हें भीख माँगते शर्म भी नहीं आती ? कोई कहेगा, घास प्योड़ लाओ, मैं तुम्हें अच्छी मजदूरी दूँगा। किसी को उनके ग्राह्य होने का विश्वास न आवेगा। अगर यहाँ उनकी रेशमी अचकन और रेशमी साफ़ा होता, बेसरिया रगवाळा दुपट्टा ही मिल जाता, तो वह थोड़े स्टांग भर लेते। ज्योतिषी बनकर वह किसी धनी सेठ को फाँस सकते थे, और इस फन में वह हस्ताद भी थे। पर यहाँ वह सामान बर्ताने—फण्टे—रस्ते तो सब लुट चुके थे। विपत्ति में कदाचित् बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है। अगर वह मैदान में खड़े होकर कोई मनोहर व्याख्यान दे देंते, तो शायद उनके दस-पाँच भक्त पैदा हो जाते। लेकिन इस तरह का स्थान ही न गया। वह सजे हुए पटाल में, फूलों से सुसजित मेज

के सामने, मञ्च पर खड़े होकर अपनी वाणी का चमत्कार दिखला सकते थे। इस दुरवस्था में कौन उनका व्याख्यान सुनेगा? लोग समझेंगे कि पागल बक रहा है।

मगर दोपहर उली जा रही थी, अधिक सोच विचार का अरक्षण न था। नहीं मन्थ्या हो गई, तो रात को लौटना असम्भव हो जायगा। फिर भोगियों की न-जाने क्या दशा हो गई अब इस अनिश्चित दशा में गठे न रह सके। चाहे जितना तिरस्कार हो, कितना ही अपमान सहना पड़े, भिक्षा के धिया और कोई उपाय न था।

वह यात्रार में जाकर एक दुकान के सामने खड़े हो गए। पर कुछ माँगने की हिम्मत न पड़ी।

दुकानदार ने पूछा—क्या लोभे?

पण्डितजी बोले—चायल का क्या भाव है?

मगर दुमरी दुकान पर पहुँचकर वह ज्यादा सावधान हो गए। सेटनी गयी पर बैठे हुए थे। पण्डितजी आकर उनसे सामन खड़े हो गए, और गीता का एक श्लोक पढ़ सुनाया। उनका शुद्ध उच्चारण और मधुर वाणी सुनकर सेटनी चकित हो गए, पूछा—कहाँ स्थान है?

पण्डित—काशी से आ रहा हूँ।

यह कहकर पण्डितजी ने सेटनी से धर्म के द्वारा लक्षण प्रत्यक्ष, और श्लोक की ऐसी अर्थों व्याख्या की कि वह मुग्ध हो गया। बोले—महाशय, आज घण्टे से मैं स्थान का परित्र काव्रिण।

कोई स्वामी श्रद्धालु होता, तो इस प्रस्ताव को सहज स्वीकार कर लेता लेकिन पण्डितजी को तो गैरतने की पत्नी था। बोले—नहीं सेटनी सुने अवकाश नहीं है।

सेट—महाशय आपको हमारी इतनी मानिरी क्यों रखेंगे।

पटितत्री जब किसी तरह ठहरने पर राजी न हुए, तो सेठजी ने वदान होकर कहा—फिर हम आपकी क्या सेवा करें ? कुछ आज्ञा दीजिए । आपकी चाणी से तो तृप्ति नहीं हुई । फिर कभी इधर आना हो, तो अवश्य दर्शन दीजिएगा ।

पंडित—आपकी इतनी श्रद्धा है, तो अवश्य भाऊँगा ।

यह कहकर पंडितजी फिर बठ खड़े हुए । संकोच ने फिर उनकी ज़बान यह बर दी । यह आदर-सत्कार इसीलिए तो है कि मैं अपना स्वार्थ-भाव छिपाए हुए हूँ । कोई इच्छा प्रकट की और इनकी आँखें बदलीं । सूखा जवाब चाहे न मिले, पर यह श्रद्धा न रहेगा । वह नीचे उतर गए, और सड़क पर एक क्षण के लिए खड़े होकर सोचने लगे—अब कहाँ जाऊँ ? इधर जाते का दिन किसी विलासी के धन की भाँति भागा चला जाता था । वह अपने ही ऊपर भुँझा रहे थे—जब किसी से माँगूँगा ही नहीं, तो कोई क्यों देने लगा ? कोई क्या मेरे मन का हाल जानता है ? वे दिन गए, जब धनी लोग ग्राहकों की पूजा किया करते थे । यह आशा छोड़ दो कि कोई महाशय आकर तुम्हारे हाथ में रुपए रख देंगे । वह धीरे धीरे आगे बढ़े ।

सदमा सेठजी ने पीछे से पुकारा—पंडितजी, जरा ठहरिए ।

पटितत्री टहर गए । फिर वा चलने के लिए आग्रह करने आता होगा । यह हीन हुआ कि एक दम रुपए का नोट लाकर दे देता, मुझे धर ले जाकर न जाने क्या करेगा ।

सगर जब सेठजी ने सचमुच एक गिनी निकालकर उनके पैरों पर रख दी तो इनकी आँखों में पृथ्वी के आँसू छलक आए । हैं, अब भी सच धर्मात्मा जब सत्कार में हैं, नहीं तो यह पृथ्वी रमातल न चली पाएँ । क्या इस वक्त उन्हें सेठजी के कल्याण के लिए अपनी देह का

सेर पाध सेर रक्त भी देना पड़ता, तो भी शोक से दे दते। गहर हठ से बोले—इसका तो कुछ काम न था, सेठजी ! मैं भिक्षुक नहीं हूँ—आपका सेवक हूँ।

सेठजी श्रद्धा विनय-पूर्ण शब्दों में बोले—भगवन्, इमे स्त्रीहार कीजिए। यह दान नहीं, भेंट है। मे भी आदमी पत्तागता हूँ। पहले मातु-संन, योगी-यती, देश और धर्म के सेवक आते रहते हैं पत्तागता क्यों हिम्मी के प्रति मेरे मन में श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती। उनसे हिम्मी तरह पिंड पुढ़ाने की पड़ जाती है। आपका सकोच देखकर मैं समझ गया कि आपका यह पेशा नहीं है। आप विहाय हैं धर्मविना हैं, पर हिम्मी सकट में पड़ हुए हैं। इस तुच्छ भेंट को स्त्रीहार कीजिए, आर मुक शारीरांत दीजिए।

(७)

पंडितजी दवाएँ लेकर घर चले, तो हर्ष, उद्वेग और विनय में इनका हृदय उड़ता पड़ता था। हनुमान् भी संजीवामुखी का हर हान प्रसन्न न हुए होंगे। ऐसा सच्चा आनंद उन्हें कभी प्राप्त न हुआ था। इनके हृदय में इनने पवित्र भावों का संचार कभी न हुआ था।

दिन बढ़त थोड़ा रत गया था। सूर्य अब अस्तमत्त गति में परिचय में और टौटने चले जाते थे। स्या उन्हें भी हिम्मी रोगी था तथा ऐसी ही वर बड़े वेग से टौटने एक पर पर्वत की छाट में टिर गए। पर्वत में चर भी पर्वतों से पर्व बटाने लगे, सातो उड़ते गरुडों को पर्वत की टानी हो।

देवने देवने श्रवण रत गया। श्रावण में टा पड़ता। दिना २५ लगे। श्रावण देव सीट की संचित कागो था। दिना २५ में सूर्य का निर पद में टाटने देखकर श्रुतिगी टौट टौटकर सुधात सवेरने लगना

हैं वसी भाँति लीलाधर ने दौड़ना शुरू किया। उन्हें अकेले पड़ जाने का भय न था, भय था अँधेरे में राह भूल जाने का। दाहने-वाएँ वस्तियाँ टूटती जाती थीं। पंडितजी को ये गाँव इस समय बहुत ही सुहावने मालूम होते थे। कितने ध्यानंद से लोग अलाव के सामने बैठे ताप रहे हैं।

सहसा उन्हें एक कुत्ता दिखाकाई दिया। न-जाने किधर से आकर वह उनके सामने पगडंडी पर चलने लगा। पंडितजी चौंक पड़े, पर एक क्षण में उन्होंने कुत्ता को पहचान लिया। वह बूढ़े चौधरी का कुत्ता मोती था। वह गाँव छोड़कर आज इधर इतनी दूर कैसे आ निकला ? क्या वह जानता था कि पंडितजी दवा लेकर आ रहे होंगे, कहीं रास्ता न भूल जायँ ? कौन जानता है, पंडितजी ने एक बार मोती कहकर पुकारा तो कुत्ते ने दुम हिलाई, पर रुका नहीं। वह हृत्से अधिक परिपश्य देकर समय नष्ट न करना चाहता था। पंडितजी को ज्ञान हुआ कि ईश्वर मेरे साथ है, वही मेरी रक्षा कर रहे हैं। अब उन्हें कुशल से घर पहुँचने का विश्वास हो गया।

दस घण्टे चलते पंडितजी घर पहुँच गए।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

रोग प्रायः न था पर गश पंडितजी को बढा था। एक सप्ताह के बाद मर्नें राणी चने हो गए। पंडितजी की जीर्ति दूर दूर तक फैल गई। वह रोगवेदना से पौर नंग्राम वरके इन आदमियों को बचा लिए थे। उन्होंने एताओं पर भी विजय पा ली थी—अलम्भव को सभव कर दिखाया था। पर त हाव नगदान् से। उनके दर्शनों के लिए लोग दूर दूर से आने लगे। कि दु पतिनी को एनी जीर्ति से इतना ध्यानद न होता था, किना रागियों को चलते-चिरते देकर।

चौधरी ने कहा—महाराज, तुम साञ्जात भगवान हो। तुम न सा जाने तो हम न बचते।

पंडितजी बोले—मैंने कुछ नहीं किया। यह सब ईश्वर की दया है।

चौधरी—अब हम तुम्हें कभी न जाने देंगे। जाकर अपने घाल बच्चों को ले आओ।

पंडित—हाँ, मैं भी यही सोच रहा हूँ। तुमको छोड़कर अब नहीं जा सकता।

(८)

मुन्हाग्रो ने मैदान गाली पाकर आम्रपाम के देहातो में मृत जा रह गया था। गाँव के गाँव सुनलमान होते जाते थे। उधर हिन्दू सभा ने मन्हाग्रो मीच लिया था। किसी की हिम्मत न पड़ती थी कि इधर आवे। लोग टुर बैठे हुए सुनलमानों पर गोला बारूद चला रहे थे। इस हत्या का बदला कैसे लिया जाय, यही उनके सामने सबसे बड़ी समस्या थी। अधिकारियों के पास वार वार प्रार्थना-पत्र भेजे जा रहे थे कि हम मामले की छान बीन की जाय, और वार वार यही नवाय मिलता या कि हत्याकारियों का पता नहीं चलता। उधर पण्डितजी के स्मारक के चमड़ा भी जमा किया जा रहा था।

मगर इस नई उद्योति ने मुन्हाग्रो का रङ्ग फीका कर दिया। यहाँ के ऐसे देवता का अवतार हुआ था, जो मुन्हाग्रो का जिला देता था, जो उनके लक्षों के कल्याण के लिए अपने प्राणों को बलिदान कर सकता था। मुन्हाग्रो के यहाँ यह विद्वि कड़ा, यह विभूति कड़ा, यह चमत्कार कड़ा? इस अद्वैत व्यवहार के सामने जयन्त और अजयन्त (श्राद्धमात्र) की कौड़ी इन्हीं के बटोर सकती थी? पण्डितजी अब क्या अपने प्राण बलिदान पर बलपूर्वक करनेवाले पण्डितजी न थे। उन्होंने नृत्तों और श्री श्री

का आदर करना सीख लिया था। उन्हें छाती से लगाते हुए अब पण्डितजी की घृणा न होती थी। अपना घर अंधेरा पाकर ही ये इसलामी दीपक की ओर मुके थे। जब अपने घर में सूर्य का प्रकाश हो गया, तो इन्हें दूसरों के यहाँ जाने की क्या जरूरत थी। सनातनधर्म की विजय हो गई। गाँव-गाँव में मन्दिर बनने लगे और शाम-सवेरे मन्दिरों से शंख और घण्टे की ध्वनि सुनाई देने लगी। लोगों के आचरण आप-ही-आप सुधरने लगे। पण्डितजी ने किसी को शुद्ध नहीं किया। उन्हें अब शुद्धि का नाम लेते शर्म छाती थी—मैं भला इन्हें क्या शुद्ध करूँगा पहले अपने को तो शुद्ध कर लूँ। ऐसी निर्मल, पवित्र आत्माओं को शुद्धि के ढोंग से अपमानित नहीं कर सकता।

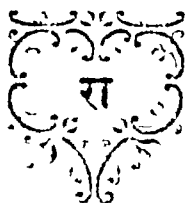
यही मन्त्र था, जो उन्होंने वन चाँदालों से सीखा था, और इसी के पल से वह अपने धर्म की रक्षा करने में सफल हुए थे।

पण्डितजी अभी जीवित हैं, पर अब सपरिवार उसी प्रांत में, उन्हीं भीला के साथ, रहते हैं।

—:o:—
The Academy

कामना-तरु

(१)



जा इन्द्रनाथ का देनांग हो जाने के बाद कुँभर राज
नाथ को शत्रुओं ने चारों ओर से घेरा रखा कि
उन्हें अपने प्राण लेकर एक पुराने सेवक की शरण
जाना पड़ा जो एक छोटे से गाँव का जागीरदार था।
कुँभर स्वभाव ही से शांति प्रिय, रतिक, हँस खेक

का मज्ज वादनेवाले युवक थे। रण-क्षेत्र की अपेक्षा कविता के क्षेत्र
में अपना चमत्कार दिखाना उन्हें अधिक प्रिय था। रतिकजनों के साथ,
द्विज, वृक्ष के नीचे बैठे हुए, कवि-वचन बोलने में उन्हें जो आनन्द
मिलता था वह शिकार या राग-दरवार में नहीं। हनु परंत माताओं से
जिसे हुए गाँव में आकर उन्हें जिय शांति और आनन्द का अनुभव हुआ
वहके बच्चे में वह ऐसे-ऐसे कई रात त्याग कर सकता था। यह पत्त
मालाओं की मनोहर छटा, यह नेत्रों की हरियाली, यह जल प्रसाद की
मृदु सीमा, यह पत्तियों की सँदी धारिया, यह मृग शाप की उपास,
छटों की कुन्नेले, यह ग्राम-नियमितियों की प्राकृतिक सरलता यह
दियों की सच्चोचमय सपत्तता, ये सभी बातें उनके लिए सुन्दरी थीं। पर
सबों में बड़कर जो वस्तु उन्हें आकर्षित करती थी, वह जागीरदार
के युवती कन्या सन्दा थी।

सन्दा घर का सारा काम काज आप ही करती थी। उसके माता जी
को वह सौतेला बच्चा ही न हुआ था। पिता की मृत्यु ही मृत्यु रस
थी। उसका विवाह हुआ साठ होनेवाला था कि हकी बच में हुआ

ने आरुढ़ उसके जीवन में नवीन भावनाओं और नवीन आशाओं को अकुरित कर दिया । उसने अपने पति का जो चित्र मन में खींच रक्खा था, वही मानो रूप धारण करके उसके सम्मुख आ गया । कुँअर की आदर्श रमणी भी चदा ही के रूप में अवतरित हो गई । लेकिन कुँअर समझते थे मेरे ऐसे भाग्य कहाँ ? चन्दा भी समझती थी कहाँ यह और कहाँ मैं !

(२)

दोपहर का समय था और जेठ का महीना । खपरैल का घर भट्टी की भाँति तपने लगा । खत की टट्टियों और तहखानों में रहनेवाले राजकुमार का चित्त गरमी से इतना बेचैन हुआ कि वह बाहर निकल आए और सामने के घाग में जाकर एक घने वृक्ष की छाँह में बैठ गए । सहसा उन्होंने देखा, चन्दा नदी से जल की गागर लिए चली आ रही है । नीचे जलती हुई रेत थी, ऊपर जलता हुआ सूर्य । लू से देह मुकसी जाती थी । कदाचित् इस समय प्यास से तड़पते हुए आदमी की भी नदी तक जाने की हिम्मत न पडती । चन्दा क्यों जल लेने गई थी ? घर में पानी भरा तुआ है । फिर इस समय वह क्यों पानी लेने निकली ?

कुँअर शीटकर उसके पास जा पहुँचे और उसके हाथ से गागर छीन लेने की चेष्टा करते हुए बोले—मुझे दे दो और भागकर छाँह में चली जाओ । इस समय पानी का क्या काम था ?

चन्दा ने गागर न छोटी । सिर से खिमका हुआ अंचल सँभाल कर बोली—तुम इस समय कैसे आ गए ? शायद मारे गरमी के अन्दर न रात लगे !

कुँअर—तुझे दे दो, नहीं मैं छीन लूँगा ।

चन्दा ने हल्किराहर कहा—राजकुमारों को गागर छेकर चलना होता नहीं होता ।

कुँअर ने गागर का मुँह पकड़कर कहा—इस अपराध का बदला दूँ
मह चुका हूँ। चन्दा, अब तो अपने को राजदुमार कहने में भी लजा
जानी है।

चन्दा—देवो धन में सुदुर्हरान होने हो और मुझे भी हैराण करने
हो। गागर छोड़ दो। सब का तो हूँ, पूजा का जल है।

कुँअर—तब मेरे ले जाने से पूजा का जल अपवित्र हो जाएगा ?

चन्दा—अच्छा भाई नहीं मानने, तो तुम्हीं ले चलो। हा नहीं तो !

कुँअर गागर लेकर आगे आगे चले। चन्दा पीछे हो ली। यमीने में
पहुँचे, तो चन्दा एक छोटे से पौधे के पास रुक कर बोली—इस देवता
की पूजा करनी है, गागर रख दो। कुँअर ने आश्चर्य में कहा—यहाँ
कौन देवता है चन्दा ? मुझ ता नहीं जानता आता।

चन्दा ने पौधे को सींचते हुए कहा—यही तो मेरा देवता है।

पानी पाकर पौधे की सुरक्षा में तुम्हें पत्तियाँ हरी हो गईं मानो उनको
घाँसे मृत्यु गई हो।

कुँअर ने पूछा—यह पौधा क्या तुमने लगाया है चन्दा ?

चन्दा ने पौधे को एक सीधी लकड़ी से बाँधा हुआ कहा हा, उस
दिन तो जब तुम यहाँ आए। यहाँ पढ़ते मेरी गुटियों का परीक्षा था।
मेरी गुटियों पर झंझ करने के लिए एक अनायास लगा दिया था। फिर
मुझे इसकी याद नहीं रही। यह मेकाप अपने ही मृत्यु गई। फिर मैंने
तुम यहाँ आए मुझे न जाने क्या इस पौध की याद आ गई। मैंने आधा
देखा, तो यह मृत्यु नया था। मैंने तुरन्त पानी लगाया इस सीध, तो
कुट-कुट ताजा होने लगा। तब से रोज इसे सींचता हूँ। यही देवता
है—मरना हो गया है।

यह कहते-कहते अपने फिर उठा कर कुँअर की आँसु बहाते

कहा—और सब काम भूल जाऊँ, पर इस पौधे को पानी देना नहीं भूलती। तुम्हीं इसके प्राण-दाता हो। तुम्हीं ने आकर इमे जिला दिया, नहीं तो बेचारा सूख गया होता। यह तुम्हारे शुभागमन का स्मृति-चिह्न है। जरा इमे देखो। मालूम होता है, हँस रहा है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यह मुझसे बोलता है। सब कहती हूँ, कभी यह रोता है, कभी हँसता है, कभी रुठता है, आज तुम्हारा काया हुआ पानी पाकर यह फूला नहीं समाता। एक एक पत्ता तुम्हें धन्यवाद दे रहा है।

कुँवर को ऐसा जान पड़ा मानो वह पौधा कोई नन्हासा क्रीडाशील बालक है। जैसे सुम्बन से प्ररुन्न होकर बालक गोद में चढ़ने के लिए दोनों हाथ फैला देता है, उसी भाँति यह पौधा भी हाथ फैलाए जान पड़ा। उसके एक एक अणु में चन्दा का प्रेम भरकर रखा था।

चन्दा के घर में खेती के सभी औजार थे। कुँवर एक फावड़ा उठा लाए और पौधे का एक थाला बनाकर चारों ओर ऊँची मेंड उठा दी। फिर खुरपी लेकर अन्दर की मिट्टी को गोठ दिया। पौधा और भी लहलहा पड़ा।

चन्दा बोली—कुछ सुनते हो, क्या कह रहा है ?

कुँवर ने सुसकिराकर कहा—हाँ ! बहता है कम्बु की गोद में बैठ गया।

चन्दा—हाँ, बह रहा है, इतना प्रेम करके फिर भूल न जाना।

(३)

मगर कुँवर को अभी राजपुत्र होने का दंठ भोगना बाकी था। शत्रुओं को न जाने कैसे उनकी टोह मिल गई। इधर तो दितविन्दुओं के आग्रह से विद्या होकर इटा सुदेरसिंह चन्दा और कुँवर के विवाह की हैसियत कर रहा था, उधर शत्रुओं का एक दल तिर पर धा पहुँचा।

कुँवर ने उस पीछे के खामपास फूल-पत्ते लगाकर एक कुलपादी-पी बना दी थी। पीछे को सींचना था उनका काम था। प्रातःकाल तब कंधे पर काँवर रखने नदी से पानी ला रहे थे कि इस यात्रक आदिमियों ने उन्हें रास्ते में घेर लिया। कुँवरसिंह तबतार लेकर दौड़ा, लेकिन आतुरों ने उसे मार गिराया। अकेला, शत्रुहीन कुँवर रथा करता। कंधे पर काँवर रखने हुए बोला—अब क्यों मेरे पीछे पड़े हो भाई? मैंने तो सब कुछ छोड़ दिया।

साहस्यार बोला—हमें आपको पकड़ ले जाने का हुजूम है।

“युद्धारा स्वामी मुझे हथकड़ी में भी नहीं देख सकता और शायद धर्म मन्त्रालय, या कुँवरसिंह की तबतार मुझे देना। अपनी रथा पीछा के लिए लड़कर प्राण दूँ।”

उसका उत्तर यही मिला कि खामपासिया ने कुँवर को पकड़कर मुग्ध कर दो और उन्हें पत्र वादे पर बिठा कर पीछे का भगा दिया। काँवर वहीं पड़ी रह गई।

उसी समय चटा पर से ग निकली। देखा, काँवर वहीं पड़ी है और कुँवर को पीछे वादे पर बिठाए लिए जा रहे हैं। चोट लागे हुए पीछे की मन्त्रि बहकते बहकते दौड़ी, फिर गिर पड़ी। उसकी आँसों में रोंगा ला गया।

सदना स्वकी दृष्टि बिना हा लक्ष पर पड़ी। उस परमात्मा का चौर ला-के पास जा पहुँचा। कंधे खली मरा नगा। प्राण खोती भी छटके हुए थे।

चन्द्रा को देखते ही कुँवर में बाँटा—यस कुँवर! हथकड़ी का बंधन कुँवर न कर सदा। प्राण निरंतर गये पर हथकड़ी—“हँस” ने सदा आनन्द प्रकट कर दिया।

(४)

धीम वर्ष बीत गए ! कुँधर कैद से न छूट सके ।

यह एक पटाड़ी किला था । जहाँ तक निगाह जाती पहाड़ियाँ ही नजर आतीं । किले में उन्हें कोई कष्ट न था । नौकर-चाकर, भोजन-वस्त्र, सैर-गिकार, किसी बात की कमी न थी । पर उस वियोगारिण को धीम शांत करता, जो नित्य कुँधर के हृदय में जला करती थी । जीवन में अथ इनके लिए कोई आशा न थी कोई प्रकाश न था । अगर कोई इच्छा थी, तो यही कि एक बार उस प्रेम-तीर्थ की यात्रा कर लें, जहाँ उन्हें वह सब कुछ मिला जो मनुष्य को मिल सकता है । हाँ, उनके मन में एक-मात्र यही अभिलाषा थी कि उन पवित्र स्मृतियों से रक्षित भूमि के दर्शन करके जीवन का उतरी नदी के तट पर अंत धर दे । वही नदी का किनारा, वही वृक्षों का कुसुम, वही चन्द्रा का छोटा-सा सुन्दर घर, वस्ती आँखों में फिग दरता और वह पौधा जिसे उन दोनों ने मिल कर मीचा था, इसमें तो मानो सबके प्राण ही बसते थे । क्या वह दिन भी आएगा जब वह हम पौधे को पूरी पूरी पत्तियों से लदा हुआ देखेगा ! कौन जाने वह घन है भी या सूत गया । कौन अब इसको सोचता होगा । चन्द्रा इतने दिनों अविवाहिता धोटे ही दैठी होगी । ऐसा सन्तान भी तो नहीं । उसे अब मेरी सुधि भी न होगी । हाँ यादद कभी अपने घर की याद पीस भाती हो, तो पौधे को देखकर उसे मेरी याद आ जाती हो । सुभ जेब लगाने के लिए एनसे अधिस्त वह जोर कर ही क्या सकती है । उस भूमि हो एक बार देखने के लिए वह अपना जीवन दे सकता था, पर यह अभिलाषा न पूरी होती थी ।

आज एक दिन बीत गया सोच और नेगद ने उठती जवा ही की बरत दिया । वहाँ से जोनिरही न रौं में नित्य । जीवन क्या

था, एक दुखदायी स्थान था। उस सारा अन्धकार में उसे कुछ न मालूम था, वय जीवन का साधारण एक अभिलाषा भी, एक सुन्दर स्थान तो जीवन में न-जाने कब अपने देगा था। एक बार फिर वही स्थान देखा जाइता था। फिर, उसी अभिलाषाओं का अन्त हो जायगा, उसे कोई इन्तजार न रहेगी। सारा अन्त भविष्य, सारी अन्तत विस्तारण इन्हीं एक स्थान में लीन हो जाती थीं।

उगले रथर्हा को अब उसकी ओर से कोई शंका न थी। उदय पर दया आती थी। रात को पहरे पर केवल काई एक आदमी रह जाता था और लोग माछी नींद सोत थे। कुँआर भाग जा सकता है इतना कोई संभावना, कोई शंका न थी। यहाँ तक कि एक दिन पर एक विवाह का निश्चय होकर बहुत कुछ लेट रहा। निद्रा हिमा हिमकत पत्र का प्रतिनाक लग प्यैठी थी। (उठने ही टूट पड़ी। कुँआर ने विवाही का नाक की आवाज सुनी। उतहा लक्ष्य बडे देग से उठने लगा। पर अचानक अन्त कितने दिनों के बाद मिला था। यह २५, मगर पाया था यह बाँव रहे थे। बरामदे के नीचे उतरने का साहस न हो सका। उनी उसकी नींद मुक्त गर्ते ना? टिप्पण उसी सदायता कर सकती था। विवाही का अगल में उसके तटवार पड़ी थी पर प्रेम का निष्ठा नहीं है। कुँआर ने विवाही क जगा दिया। वह बाँह पर उठ पड़ा। उगले मगर की उसके टिक से निकल गया। दुपही यात्रा का साया भी नहीं लेने लगा।

एक हाथ तर उसकी निद्रा टूटी, ता अपने ल। इहए कुँआर क जगा में लाहा। कुँआर का पना न था।

कुँआर इस मन्य तथा के सोझा पर मगर, कानना की दुपही। उगले का रदा था—उस स्थान का जग उतन मून स्थान देगा था।

किले में चारों ओर तलाश हुई, नायक ने सवार दौड़ाए, पर कहीं पता न चला ।

(५)

पहाड़ी रास्तों का काटना कठिन, उस पर अज्ञातवास की कैद, मृत्यु क द्रुत पाँटे लगे हुए जिनसे वचना सुशकिल । कुँअर को कामना-तीर्थ में महीनों लय गए । जब यात्रा पूरी हुई तो कुँअर में एक कामना के सिवा और कुछ शेष न था । दिन-भर की कठिन यात्रा के बाद जब वह उस स्थान पर पहुँचे तो सन्ध्या हो गई थी । वहाँ घरती का नाम भी न था । दो चार टूटे पड़े भोपड़े उस बस्ती के चिह्न-स्वरूप शेष रह गए थे । वह भोपड़ा जिसमें कभी प्रेम का प्रकाश था, जिसके नीचे उन्होंने जीवन का सुखमय दिन काटे थे, जो उनकी कामनाओं का आगार और उनकी श्वासना का मंदिर था, अब उनकी अभिलाषाओं की भाँति भग्न हो गया था । भोपड़े की भग्नावस्था मूक भाषा में अपनी कथा सुना रही थी । कुँअर उसे देखते ही "चदा चदा" पुकारता हुआ दौड़ा । हमने इस रज को साथे पर मला, मानो किसी देवता की विभूति हो, और इसी टूटी हुई दीवारों से चिमट कर बड़ी देर तक रोता रहा । हाय रे अभिलाषा ! वह रोने ही के लिए इतनी दूर से भाया था ? रोने ही की अभिलाषा इतने दिनों से इसे विकल कर रही थी ? पर हम रोने में कितना स्वर्गीय आनन्द था । क्या समस्त मसार का सुख इन दीवारों की तुलना कर सकता था ?

तब वह भोपड़े से निकला । सातने मैदान में एक वृक्ष हरा ही मदान पहलवों को गोंड से लिए, मानो हमका स्वागत करने को खड़ा था । वह परी पौधा है, जिसे आज से दोस वर्ष पहले रोने ने आगे-दिन दिया था । वह अब हलत की भाँति टूटा और आकर हम वृक्ष से लिपट

गया मानो झोई बिना अपने नाकरीन पुत्र को प्राणी से लगाए हुए था। यह उनी प्रेम की निशानी है, उसी अन्न प्रेम की जो इनके पिता ने उद्धार प्राप्त करना विश्वास ही माना है। कुँवर का हृदय ऐसा फटा हुआ मानो इस दुःख को अपने अन्तर में लेगा, जिधमें उसे हताशा और शोक भी न लगे। उनके गहले पलक पर चंद्रा की स्मृति घेरी हुई थी। पति को वा छलना समा संसार तथा सभी उसके सुख था। तब तब में इनका था, मारा देह भूज ल्याव और भक्त से शिखर ही रही थी। पर, तब उक्त दुःख पर चड गया, हतनी कर्ती से चडा हि द्रव्य का न पता था। गया जेही फुलापी पर बैठकर उगा चारा और तब लगी कृष्टि डाला। यही उगाकी कामनाया का स्वर्ग था। मारा प्रेय चलायया रहा था। दुःख का सृष्टी अर्थ श्रेणियों पर चंद्रा पैदा था रही ज, अष्टाव में नैमशास्त्री लालिमामयी नीमश्री पर चंद्रा हा डी जाई थी। स्वर्ग की श्रेणियों प्रकाश की रवाओं पर चंद्रा ही बैठे बैठ रही थी। कुँवर क्रम से आया, पत्नी हाता तो हस्ती उलिया पर बैठे लया जीवन के दिन पर काता।

यह श्रेणियाँ ही गया, ताँ अन्न नाचे रया और उगा था ही नाई जे ही ना स्मृति नाच कर, पतिवा ही मारा वा उँयार लेडा। यही उक्त जीवन का समाप्त था, पाँचवाँ दिन था। अन्न देह हृदय तब ही मारा जाई लीन आयता। यिन्ना छत्र न ही मारा ही देह मारा का न उँयार।

(२)

यह विचार, अन्न अँडर ही मारा पड गया आकर उँयार ही देह ही अँडर ही मारा पड गया। यही मारा पड गया ही देह ही मारा पड गया है। यह मारा पड गया उँयार उँयार मारा पड गया

दिल टठी, कुँअर का हृदय इस तरह ऐंठने लगा मानो वह फट जायगा ।
 हय स्वर में कण्ठा और वियोग के तीर-से भरे हुए थे । आह ! पक्षी,
 तब जोड़ा भी अचक्षु बिलुड गया है, नहीं तेरे राग में इतनी व्यथा,
 इतना विपाद, इतना रुदन कहाँ से आता ! कुँअर के हृदय के टुकडे
 हुए जाते थे, एक-एक स्वर तीर की भाँति दिल को छेदे ढालता था ।
 वहाँ घंटे न रह सके । बठकर एक आत्म विस्मृत की दशा में दौड़े हुए
 गोपबन्धु में गए, वहाँ ने फिर वृक्ष के नीचे आए । वन पक्षी को कैसे पार्य !
 वहाँ दिवाह्न नहीं देता ।

पक्षी का गाना बंद हुआ, तो कुँअर को नींद आ गई । उन्हें स्वप्न
 में एसा जान पडा कि वही पक्षी उनके समीप आया । कुँअर ने ध्यान से
 देखा तो वह पक्षी न था, चन्दा थी, हाँ, पुरवक्ष चदा थी ।

कुँअर ने पूछा—चन्दा यह पक्षी यहाँ कहाँ ।

चन्दा न कदा—मैं ही तो वह पक्षी हूँ ।

कुँअर—तुम पक्षी हो ! क्या तुम्हीं या रही थीं ?

चन्दा—हाँ शिखरम मैं ही या रही थी । एसी तरह रोते एक घुग
 बात गया ।

गया, मानो कोई पिता अपने मातृहीन पुत्र को छानी से लगाए हुए हो। यह उसी प्रेम की निशानी है, उसी अक्षय प्रेम की जो इतने दिनों के बाद आज इतना विशाल हो गया है। कुँअर का हृदय ऐसा फूट उठा मानो इस वृक्ष को अपने अदर रख लेगा, जिसे उसे हानि का भौंका भी न लगे। उसके एक एक पल्लव पर चंदा की स्मृति धेड़ी हुई थी। पक्षियों का इतना रम्य संगीत क्या कभी उसने सुना था। उनके हाथों में दम न था, सारी देह झूल प्यास और थकन से शिथिल हो रही थी। पर, वह उस वृक्ष पर चढ़ गया, इतनी फुर्ती से चढ़ कि बंदर भी न चढता। सबसे ऊँची फुलगी पर बैठकर उसने चारों ओर गर्व पूर्ण दृष्टि डाला। यही उसकी कामनाओं का स्वर्ग था। सारा दृश्य चदामय हो रहा था। दूर की नृती पर्वत श्रेणियों पर चंदा बैठी गी रही थी, आकाश में तैरनेवाली लालिमामयी नौकाओं पर चंदा ही उड़ी जाती थी। सूर्य की श्वेत पीत प्रकाश की रेखाओं पर चंदा ही बैठी हँस रही थी। कुँअर के मन में आया, पक्षी होता तो इन्हीं डालियों पर बैठा हुआ जीवन के दिन पूरे करता।

जब अँधेरा हो गया, तो कुँअर नीचे उतरा और उसी वृक्ष के नीचे थोड़ी-सी भूमि झाड़कर, पत्तियों की शय्या बनाई और लेटा। यही उसके जीवन का स्वप्नस्वप्न था, आठ यही वैराग्य। अब वह इस वृक्ष की शरण छोड़कर कहीं न जायगा। दिल्ली के ताप के लिए भा वह इस आश्रम को न छोटेगा।

(६)

उसी स्निग्ध, अमल चाँदनी में सहना एक पक्षी आकर उस वृक्ष पर बैठा और दर्द में डूबे हुए स्वरों में गाने लगा। ऐसा जान पड़ा मानो वह वृक्ष मिर चुन रहा है। वह नीरवरात्रि उस वेदनामय सर्गात्त में

हिल उठी, कुँआर का हृदय इस तरह ऐँठने लगा मानो वह फट जायगा ।
 हम स्वर में कल्या और वियोग के तीर-से भरे हुए थे । आह ! पक्षी,
 तब जोड़ा भी अवश्य बिछुड गया है, नहीं तेरे राग में इतनी व्यथा,
 इतना विपाद, इतना रुदन कहाँ से आता । कुँआर के हृदय के टुकड़े
 हुए जाते थे, एक-एक स्वर तीर की भाँति दिल को छेरे डालता था ।
 यहाँ बैठे न रह सके । उठकर एक आत्म विस्मृत की दशा में दौड़े हुए
 भाँपड़े में गए, वहाँ से फिर वृक्ष के नीचे आए । वन पक्षी को कैसे पाएँ !
 यहाँ दिपवाई नहीं देता ।

पक्षी का गाना बंद हुआ, तो कुँआर को नौद आ गई । उन्हें स्वप्न
 में ऐसा जान पड़ा कि वही पक्षी उनके समीप आया । कुँआर ने ध्यान से
 देखा तो वह पक्षी न था, चन्दा थी, हाँ प्रत्यक्ष चंदा थी ।

कुँआर ने पूछा—चंदा यह पक्षी यहाँ कहाँ ।

चंदा न कदा—मैं ही तो वह पक्षी हूँ ।

कुँआर—तुम पक्षी हो ! क्या तुम्हीं या रही थीं ?

चंदा—हाँ प्रियतम, मैं ही या रही थी । इसी तरह रोते एक युग
 बीत गया ।

कुँआर—तुम्हारा घोंसला कहाँ है ?

चंदा—वहाँ भीतरों में जहाँ तुम्हारी खाट थी । उसी खाट के धान
 के नीचे छुपा घोंसला बनाया है ।

कुँआर—और तुम्हारा जोरा कहाँ है ?

चंदा—मैं अकेली हूँ । सदा को अपने प्रियतम के स्मरण करने में,
 पक्ष गिर रोने में जो सुख है वह जोड़े में नहीं, मैं इसी तरह अकेली
 गूँगी और हँसती रहूँगी ।

कुँआर—मैं क्या पक्षी नहीं हो सकता ?

चंदा चली गई। कुँअर को नोट खुर गई। ऊपा की लालिमा आकाश पर छाई हुई थी और वह चिड़िया, कुँअर के शय्या के समीप एक ढाल पर बैठी चहक रही थी। अब उन संगीत में बहणा न थी विलाप न था, उसमें आनन्द था, चापल्य था, सारस्य था, वह वियोग का फरुण क्रन्दन नहीं, मिलन का मधुर संगीत था।

कुँअर सोचने लगे, इस स्वप्न का क्या रहस्य है ?

(७)

कुँअर ने शय्या से उठने ही एक झाड़ू बनाया और उस झोपड़े को साफ करने लगे। उनके जीतेजी हमकी यह भयन दशा नहीं रह सकती। वह इसकी दीवारें उठाएँगे, इस पर छप्पर ढालेंगे, इसे लीपेंगे। हममें उनकी चंदा स्मृति वास करती है, झोपड़े के एक कोने में वह काँवर रखी हुई थी जिस पर पानी उलटाकर वठ इस वृक्ष को सींचते थे। उन्होंने काँवर उठा ली और पानी लाने चले। दो दिन से कुछ भोजन न किया था। गत को भूल्य लगी हुई थी, पर इस समय भोजन की थिलकुल इच्छा न थी। देह में एक अद्भुत स्फूर्ति का अनुभव होता था। उन्होंने नदी से पानी ला ला मिट्टी भिगोना शुरू किया। दौड़ जाते थे और दौड़े आने थे। इतनी शक्ति उन्हें कभी न थी।

एक ही दिन में इतनी दीवार उठ गई, जितनी चार मजदूर भी न उठा सकते थे। और किननी सीधी, चिक्की दीवार थी कि कारीगर भी देमकर लज्जित हो जाता। प्रेम की शक्ति अपार है।

सन्ध्या हो गई। चिड़ियों ने वपेरा लिया। वृक्षों ने भी आँसू बन्की, मगर कुँअर को आराम कहाँ। तारों के मलिन प्रकाश में मिट्टी क रहे रक्ते जा रहे थे। हाय रे कामना ! क्या तू हम बेचारे के प्राण ही लेकर छोड़ेगी ?

वृक्ष पर पक्षी का मधुर स्वर सुनाई दिया। कुँअर के हाथ से घड़ा टूट पड़ा। हाथ और पैरों में मिट्टी लपेटे वह वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गए। इस स्थर में कितना लालित्य था, कितना उल्लास, कितनी उद्योति। मानव संगीत इसके सामने त्रैसुरा घालाप था। उसमें वह जागृति, वह अमृत यह जीवन कहीं। संगीत के आनन्द में विस्मृत है, पर वह विस्मृत कितनी स्मृतिमय होता है, अतीत को जीवन और प्रकाश से रञ्जित करके प्रत्यक्ष कर देने की शक्ति, संगीत के सिवा और कहीं है? कुँअर के हृदय-नेत्रों के सामने वह दृश्य भा खड़ा हुआ, जब चन्द्रा इसी पोथे का नदी से जल ला लाकर सींचती थी। टाय, क्या वे दिन फिर आ सकने हैं।

सहसा पुन घटोही आकर खड़ा हो गया और कुँअर को देखकर वह प्रश्न करने लगा, जो स्वाधारण्यत. दो अपरिचित प्राणियों में हुआ कर्त है—कौन हो, कहां से आते हो, कहाँ जाओगे। पहले वह भी इसी गाँव में रहता था, पर जब गाँव उजड़ गया, तो समीप के एक दूसरे गाँव में जा गया था। अब भी इसके खेत यहाँ थे। रात को जङ्गली पशुओं से अपने खेतों का रक्षा करने के लिए वह यहाँ आकर सोता था।

कुँअर ने पूछा—तुम्हें शकूम है, इस गाँव में एक कुँअरसिंह ठाकुर रात में ?

विमान ने दही वस्तुकता से कहा—हाँ हाँ भाई, जानना क्यों नहीं ? खदार यहाँ तो मारे गए। तुमसे क्या इनको जान पहचान थी ?

कुँअर हाँ इन दिनों कभी कभी आया करता था। मैं भी राजा की सला में मार गया। इनके घर में और कोई न था ?

विमान - कर भाई कुछ न पूछो, दही करण क्या है। उसकी स्त्री तो पहले ही मर चुकी थी। केवल लटकी बच रही थी। आह ! कैसी

सुरीला, कैसी सुवद वह लडकी थी ! उसे देख कर आँखों में ज्योति आ जाती थी। बिलकुल स्वर्ग की देवी जान पडती थी। जब कुबेरमिह जीता था, तभी कुँभर इन्द्रनाथ यहाँ भाग कर आए थे और उसके यहाँ रहे थे। उस लडकी की कुँभर से कहीं बातचीत हो गई। जब कुँभर को शत्रुओं ने पकड लिया, तो चन्द्रा घर में अकेली रह गई। गाँववालों ने बहुत चाहा कि उसका विवाह हो जाय। उसके लिए वरों का तोडा न था भाई। ऐसा कौन था जो उसे पाकर अपने को धन्य न मानता। पर वह किसी से विवाह करने पर राजी न हुई। यह पेड जो तुम देख रहे हो, तब छोटासा पौधा था। इसके आसपास फूलों की कई और क्यारियाँ थीं। इन्हीं को गोडने, निराने, सींचने में उसका दिन कम्ता था। बस यही कइता कि हमारे कुँभर साहय आते होंगे।

कुँभर की आँखों से आँसू की वर्षा होने लगा। सुमाफिर ने जरा दम लेकर कहा—दिन-दिन घुलती जाती थी। तुम्हें विश्वास न आया भाई, उसने दस साल इसी तरह काट दिए। इतनी दुर्बल हो गई थी कि पहचानी न जाती थी। पर अब भी उसे कुँभर साहय के आने की आशा बनी हुई थी। आखिर एक दिन इसी वृक्ष के नीचे उसकी लाश मिली। ऐसा प्रेम कौन करेगा भाई ! कुँभर न-जाने मरे कि जिण, कमी—हैं हम विरहिणी की याद भी आती हैं कि नहीं, पर इसने तो प्रेम को निभाया जैसा चाहिए।

कुँभर को ऐसा जान पडा मानो हृदय फटा जा रहा है। वह कलेत्रा याम कर बैठ गए। सुमाफिर के हाथ में एक सुलगाता हुआ उपला था। उसने चिलम भरी और दो-चार दम लगाकर बोला—

उसके मरने के बाद यह घर गिर गया। गाँव पड़ने ही उजाट था। अब तो और भी सुनसान हो गया। दो-चार अमामी यहाँ आ बैठे

ये । अब तो चिड़िया का पूत भी यहाँ नहीं घाता । उसके मरने के कई महीने के बाद यही चिड़िया इस पेड़ पर बोलती हुई सुनाई दी । तब ये दरावर इसे यहाँ बोलते सुनता हूँ । रात को सभी चिड़ियाँ सो जाती हैं, पर यह रात-भर बोलती रहती है । इसका जोड़ा कभी नहीं दिखाई दिया । वह, फुट्टैल है । दिन भर उसी झोपड़े में पड़ी रहती है । रात को हम पेड़ पर आ बैठती है । मगर हम समय इसके गाने में कुछ और ही पात है, नहीं तो सुनकर रोना आता है । ऐसा जान पड़ता है मानो कोई झलेजे को मसोम रहा हो । मैं तो कभी कभी पड़े-पड़े रो दिया करता हूँ । सब लोग कहते हैं कि यह बड़ी चन्दा है । अब भी कुंभर के वियोग में विलाप कर रही है । सुभे भी ऐसा ही जान पड़ता है । आज न जाने क्यों मगन है ।

कियान तंदाक पीकर सो गया । कुंभर कुछ देर तक सोया हुआ खटा रहा । फिर धीरे से बोला—चन्दा, क्या सचमुच तुम्हीं हो ? मेरे पास क्यों नहीं आती ?

पुरु धनु में चिड़िया आकर उसके हाथ पर बैठ गई । चन्द्रमा के प्रकाश में कुंभर ने चिड़िया को देखा । ऐसा जान पड़ा मानो उनकी आँखें खुल गई हों । मानो आँखों के हासने से कोई आवरण हट गया हो । पक्षी के रूप में भी चन्दा की सुगन्धित अक्षित थी ।

दूसरे दिन तिस्रान सोबर उठा, तो कुंभर की लाश पड़ी हुई थी ।

(८)

कुंभर अब नहीं है, हिन्दु इनके झोपड़े के दीवारों बन गई है, ऊपर फूल का तारा लपकर पड़ गया है और झोपड़े के द्वार पर फूलों की कड़ियाँ खिल रही हैं । गाँव के किसान इनके बंधिद और बना कर पढ़ेंगे ।

57. ²⁸ Answer जुलै १९५७ ११/०१/१९५७

प्रेम तीर्थ

वस भोपडे में अब पक्षियों के एक जोड़े ने अपना घोंसला बनाया है। दोनों साय-साय दाने-चारे की खोज में जाते हैं, साथ साथ भाते हैं। रात को दोनों वसी वृक्ष की डाल पर बैठे दिखाई देते हैं। उनका सुरम्य मगीत रात की नीरवता में दूर तक सुनाई देता है। वन के जीव जंतु वह स्वर्गीय गान सुनकर मुग्ध हो जाते हैं।

यह पक्षियों का जोड़ा कुँभर और चन्दा का जोड़ा है, इसमें किपी को सदेह नहीं है।

एक बार एक व्याध ने इन पक्षियों को फँसाना चाहा, पर गाँववालों ने उसे मार कर भगा दिया।

The Head Master
Jawa Har High School
Bhu naray (B) Saran
All (Gandhi)

सती

(१)



शताब्दियों से अधिक धीत गए हैं, पर चितादेवी का नाम चला जाता है। बुन्देलखण्ड के एक छोटे स्थान में आज भी मंगलवार को मछलों स्त्री-पुरुष चितादेवी की पूजा करने आते हैं। उस दिन यह निर्जन स्थान खोहाने गीतों से गुँज उठता है, टीले घोर टोकरे रमणियों के रंग-बिरंगे वस्त्रों से सुशोभित हो जाते हैं। देवी का मन्दिर एक बहुत ऊँचे टीले पर बना हुआ है। उसके कलश पर लहराती हुई लाल पताका दहल दूर से दिखाई देती है। मंदिर इतना छोटा है कि उसमें सुराङ्ग से एकमात्र दो आदमी समा सकते हैं। भीतर कोई प्रतिमा नहीं है, केवल एक छोटी सी बेदी बनी हुई है। नीचे से मंदिर तक पत्थर का जीना है। भीत भाग में धक्का खाकर कोई नीचे न गिर पड़े, हस्तिप्र जीने के दोनों तरफ हीवार बनी हुई है। यहीं चितादेवी सती हुई थीं, पर लोड-रीति के अनुसार वह अपने मृत पति के साथ चिता पर नहीं बैठी थीं। हमका पति राध जोड़े सामने खड़ा था, पर वह हमकी ओर घ्रांस उठा कर भी न देखती थी। वह पति के शरीर के साथ नहीं उनकी आन्ना के साथ खड़ी हुई। हम चिता पर पति के शरीर न था, हमकी मर्दाटा बरती-रूत हो रही थी।

(२)

यमुना-तट पर कालपी एक छोटा सा नगर है । चिन्ता उसी नगर के एक वीर बुन्देले की काया थी । उसकी माता उसकी बाल्यावस्था में ही परलोक सिंघार चुकी थी । उसके पालन-पोषण का भार पिता पर पड़ा । वह संग्राम का समय था, योद्धाओं को कमर खोलने की भी फुरमत न मिलती थी, ये घोड़े की पीठ पर भोजन करते और जीन ही पर रूपकियाँ ले लेते थे । चिन्ता का बाल्यकाल पिता के साथ समर-भूमि में कटा । प्रायः उसे किसी मोह या वृक्ष की छाड़ में छिपाकर मैदान में चला जाता । चिन्ता निश्चक भाव से बैठी हुई मिट्टी के किले बनाती और गिगाडती । उसके घरोंदे किले होने थे, उसकी गुडियाँ छोडनी न छोडती थीं । वह मियारियों के गुट्टे बनाती और उन्हें रणक्षेत्र में गड़ा करती थी । कभी कभी उसका पिता मध्या-समय भी न लौटता पर चिन्ता को भय न हुआ तक न गया था । निर्जन स्थान में भूषी-प्यासी रात-रात भर बैठी रह जाती । उसने नेवले और मियार की कहानियाँ कभी न सुनी थीं । वीरों के आत्मोत्सर्ग की कहानियाँ, और वह भी योद्धाओं के मुँह से, सुन सुनकर वह आदर्शवादिनी बन गई थी ।

एक बार तीन दिन तक चिन्ता को अपने पिता की खबर न मिली । एक पहाड़ की खोह में बैठी मन-ही-मन एक ऐसा किला बना रही थी, जिसे शत्रु किसी भी भाँति जान न सके । दिन-भर वह उसी किले का चला सोचती और रात को उसी किले का स्वप्न देखती । तीसरे दिन के समय उसके पिता के कई साथियों ने आकर उसके सामने रात शुरू किया । चिन्ता ने विस्मित होकर पूछा—‘दादाजी कहाँ हैं ? तुम लोग क्यों रोते हो ?’

किसी ने इसका उत्तर न दिया । वे जोर से बाँटें मार-मारकर रोते

हने। चिन्ता समझ गई कि उसके पिता ने वीर-गति पाई। उस तेरह वर्ष की बालिका की आँखों से आँसू की एक बूँद भी न गिरी, मुख जरा भी मलिन न हुआ, एक आह भी न निकली। हँसकर बोली—
 “अगर उन्होंने वीर-गति पाई, तो तुम लोग रोते क्यों हो? योद्धाओं के लिए इससे घटकर और कौन मृत्यु हो सकती है, इससे बढ़कर उनकी वीरता का और क्या पुरस्कार मिल सकता है? यह रोने का नहीं, आनन्द मनाने का अवसर है।”

एक सिपाही ने चिन्तित स्वर में कहा—“हमें तुम्हारी चिन्ता है। तुम अब कहाँ रहोगी?”

पिता ने गंभीरता से कहा—“इसकी तुम कुछ चिन्ता न करो दादा! मैं अपने बाप की बेटी हूँ। जो कुछ उन्होंने किया, वही मैं भी करूँगी। अपनी मातृ भूमि को शत्रुओं के पजे से छुटाने में उन्होंने प्राण दे दिए। मेरे सामने भी वही आदर्श है। जाकर अपने आदमियों को सँभालिए। मेरे लिए एक छोटे और दयिदारों का प्रबंध कर दीजिए। ईश्वर ने चाहा, तो आप लोग मुझे किसी से पीछे न पावेंगे। लेकिन यदि मुझे पीछे रहत दखना, तो तलवार के एक हाथ से इस जीवन का अंत कर देना। यही मेरी आपसे विनय है। जाएँ, अब विलंब न कीजिए।”

सिपाहियों को चिन्ता के ये वीर दचन सुनकर कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ। हाँ, उन्हें यह सबेह अदृश्य हुआ कि क्या यह कोमल बालिका अपने संकल्प पर दृढ़ रह सकेगी।

मिलती रहती थी। उसके सामने वे कैसे कदम पीछे हटाते ? जब कोमलांगी युवती आगे बढ़े, तो कौन पुरुष कदम पीछे हटाएगा ? मुन्दरियों के सम्मुख योद्धाओं की वीरता अजेय हो जाती है। रमणी के चचन बाण योद्धाओं के लिए आत्म समर्पण के गुप्त सन्देश हैं, उसकी एक चितवन कार्यों में भी पुरुषत्व प्रवाहित कर देती है। चिन्ता की छवि और कीर्ति ने मनचले सूरमों को चारों ओर से खींच-खींचकर उसकी मना को सजा दिया, जान पर खेलनेवाले भौरि चारों ओर से आ-आकर हम फल पर मँडलाने लगे।

इन्हीं योद्धाओं में रत्नसिंह नाम का एक युवक राजपूत भी था।

यों तो चिन्ता के सैनिकों में सभी तलवार के धनी थे, घात पर जान देनेवाले, उसके इशारे पर आग में कूदनेवाले उसकी आज्ञा पाकर एक वार आकाश के तारे तोड़ लाने को भी चल पड़ते, किन्तु रत्नसिंह समयसे बड़ा दुःखा था। चिन्ता भी हृदय में उसमें प्रेम करती थी। रत्नसिंह अन्य वीरों की भाँति अकपड, मुँहफट या घमंडी न था। और लोग अपनी अपनी कीर्ति को मूँच बड़ा बड़ाकर बयान करते। आत्म प्रशंसा करते हुए उनकी जयान न रुकती थी। वे जो कुछ करते, चिन्ता को उनके लिए। उनका ध्येय अपना कर्तव्य न था, चिन्ता थी। रत्नसिंह कुछ करता, शान-भाव से। अपनी प्रशंसा करना तो टूट रहा, पर कोई शेर ही क्यों न मार आवे, उसकी चरचा तक न करना। उसकी चरचा तो और नम्रता सकोच की सीमा से भी बट गई थी। जौं प्रेम में विलास था, पर रत्नसिंह के प्रेम में त्याग और तप। और लोग भी नोड़ मोने थे, पर रत्नसिंह तारे गिन-गिनकर शान काटना था। और सब अपने दिल में समझने थे कि चिन्ता मेरी होगी देवन रत्नसिंह निराग था, और इसी लिए उसे किसी म न द्रोण था, न राग।

औरों को चिन्ता के सामने चहकते देखकर उसे उनकीवाक्पटुता पर आश्चर्य होता, प्रतिक्षण उसका निराशांधकार और भी घना होता जाता था। कभी-कभी वह अपने बोदेपन पर झुँकला उठता—क्यों ईश्वर ने उसे उन गुणों से वंचित रक्खा, जो रमणियों के चित्त को मोहित करते हैं ? उसे कौन पूछेगा ? उसकी मनोव्यथा को कौन जानता है ? पर वह मन में झुँकलाकर रह जाता था। दिखावे की उसमें सामर्थ्य ही न थी।

आधी से अधिक रात बीत चुकी थी। चिन्ता अपने खीने में विधाम कर रही थी। सैनिकगण भी कड़ी मजिल मारने के घाट कुछ या-पीकर गाकिल पड़े हुए थे। आगे एक घना जंगल था। जंगल के उम-पार शत्रुओं का एक दल डेरा टाले पड़ा था। चिन्ता उसके घाने की खपर पाकर भागाभाग चली आ रही थी। इतने प्रातःकाल शत्रुओं पर धावा करने का निश्चय कर लिया था। उसे विश्वास था कि शत्रुओं को मेरे आने की खपर न होगी। किन्तु यह उसका भ्रम था। उसी की देना था एक घादगी शत्रुओं से मिला हुआ था। वहाँ ही तदर्थ वहाँ नित्य पहुँचती रहती थी। उन्होंने चिन्ता से निश्चिन्त होने के लिए एक पद्यग्र रप रक्खा था—इसकी गुप्त रत्ना करने के लिए तीन सादनी सिपाहियों को नियुक्त कर दिया था। वे तीनों हिंस्र पशुओं की भाँति दूरे-दूर जंगल को पार करके आए, और वृक्षों की छाट में लटे होकर सोपने लगे कि चिन्ता का खीसा कौन सा है। सारी सेना देखकर ली रही थी, इससे उन्हें अपने कार्य की सिद्धि में ऐसा-सात्र नदेह न था। वे लगे ही आते-ले निकले, और जमीन पर नगर की तरह रेंगने हुए चिल दे लीमे ही हार चले।

के कारण निद्रा में मग्न हो गए थे। केवल एक प्राणी गीमे के पीठे मारे ठंड के सिकुड़ा हुआ बैठा था। यह रत्नमिंद्र था। आज उसने यह कोई नई बात न की थी। पडावों में उसकी रातें हमी भाँति चिन्ता के नीम के पीठे बैठे बैठे कटती थीं। बातकों की आहट पाकर उसने तलवार निकाल ली और चौककर उठ खड़ा हुआ। देखा, तीन आदमी फुके हुए चले आ रहे हैं। श्रय क्या करे ? अगर शोर मचाता है, तो सेना में खर पली पड जाय, और श्रधरे में लोग एक दुसरे पर वार करके आपस ही में खट मरें। इधर अकेले तीन जवानों से भिडने में प्राणों का भय। अधिक मोचने का मौका न था। उसमें योद्धाओं की अविलंब निश्चय कर लेने की शक्ति थी। तुरत तलवार सींच ली, और उन तीनों पर दृढ़ पडा। कुछ मिनट तक तलवारें उपाल्प चलती रहीं। फिर मन्नाटा ह गया। उधर वे तीनों आहत होकर गिर पडे, इधर यह भी जवानों से चूर होकर अचेत हो गया।

प्रात काल चिन्ता उठी, तो चारों जवानों को भूमि पर पडे पाया। उसका कलेजा धक्-मे हो गया। समीप जाकर देखा, तीनों आक्रमण कारियों के प्राण निकल चुके थे, पर रत्नमिंद्र की साँस चल रही थी। मारी घटना समझ में आ गई। नारीत्व ने वीरत्व पर विजय पाई। तिन अस्त्रों से गिता की मृत्यु पर श्राव का एक बंद भी न गिरी थी इन्हीं श्रावों से श्रांसुओं का झट्टी लग गई। उसने रत्नमिंद्र का गिर अपनी जाँघ पर रख लिया, और तदयागण में रचे हुए स्वयंवर में उस गले में जयमाला टांग दी।

(८)

महानि-भर न रत्नमिंद्र की श्रावें खुटीं, और न चिन्ता की श्रावें बंद हुईं। चिन्ता उसके पास से एक क्षण के लिए भी कहीं न जाता। न

अपने इलाके की परवा थी, न शत्रुओं के बढ़ते चले आने की फिक्र। रत्नसिंह पर वह अपनी सारी विभूतियों को बलिदान कर चुकी थी। पूरा महीना बीत जाने के बाद रत्नसिंह की आँख खुली। देखा चारपाई पर पड़ा हुआ है, और चिन्ता मामने पत्ता लिए खड़ी है। क्षणिक स्वर में बोला—“चिन्ता, पंखा मुझे दे दो। तुम्हें कष्ट हो रहा है।”

चिन्ता का हृदय हम समय स्वर्ग के अखंड, अपार सुख का अनुभव कर रहा था। एक महीना पहले जिस शीर्ष शरीर के लिरहाने वैठी हुई वह नैराश्य से रोया करती थी, उसे आज बोलते देखकर उसके आह्लाद का पारावार न था। उसने स्नेह-मधुर स्वर में कहा—“प्राणनाथ, चट्टि यह क्या है, तो सुख क्या है, मैं नहीं जानती।” “प्राणनाथ”—इस सघोधन में विदग्ध मग्न को-सी शक्ति थी। रत्नसिंह की धारों धमक उठीं। जीर्ण सुप्ता प्रदीप्त हो गईं, नलों में एक नए जीवन का संचार हो गया, और यह जीवन कितना स्पृष्टिमय था, इसमें कितना धरसाह, कितना माधुर्य, कितना उल्लास और कितनी करपा थी। रत्नसिंह के अग अग फहकने लगे। उसे अपनी भुजाओं में ध्वजिक परामत्त का अनुभव होने लगा। ऐसा जान पटा, मानो वह सारे सत्कार को सर कर सबता है, उठकर आकाश पर पहुँच सकता है, एवंतो वो चीर सबता है। एक क्षण के लिए उसे ऐसी लृप्ति हुई, मानो हमनी सारी अभिलाषाएँ पूरी हो गईं हैं, मानो वह अद किसी से डूब गयी पारता। रायद शिष्य को सामने खड़े देखकर भी वह कुछ घरे था। बोर् परदान न मानेगा। उस अद किसी कद्वि की, जिना पदार्थ का रूपता न था। हलै गर्व हो रहा था, मानो उसने अर्धिड चुन्नी, एहल अर्धिड भास्वशाली पुरद सत्कार में और कर्द न होगा।

चिन्ता अपनी अरना दाइय पूरा न कर पाई थी। उनी प्रन्त में

बोली—“हाँ, आपको मेरे कारण अलसता दुस्सह यातना भोगनी पड़ी।”

रत्नसिंह ने बठने की चेष्टा करके कहा—“बिना तप के सिद्धि नहीं मिलती।”

चिन्ता ने रत्नसिंह को कोमल हाथों से लिटाते हुए कहा—“हम सिद्धि के लिए तुमने तपस्या नहीं की थी। झूठ क्यों बोलने हो ? तुम केवल एक अश्वला की रक्षा कर रहे थे। यदि मेरी जगह कोई दूसरी स्त्री होती, तो भी तुम इतने ही प्राण-पण से उसकी रक्षा करते। मुझे इमला दिश्रवाम है। मैं तुमसे सत्य कहती हूँ, मैंने आजीवन ब्रह्म गारिणी रहने का प्रण कर लिया था, लेकिन तुम्हारे आत्मोत्सर्ग ने मेरे प्रण को तोड़ डाला। मेरा पालन बोद्धाओं की गोद में हुआ है, मेरा हृदय उन्नी पुण्यसिंह के चरणों पर अर्पण हो सकता है, जो प्राणों की राजी खेल सकता हो। रमिकों के हाम विलास, गुणों के रूप रग श्रोग फेकैतों के डाँव घात का मेरी दृष्टि में रत्तीभर भी मूल्य नहीं। उनकी नट प्रिया को मैं कब तक तमाशे की तरह देखती हूँ। तुम्हारे ही हृदय में मैंने सच्चा उत्सर्ग पाया, और तुम्हारी दासी हो गई—आन से नहीं, बहुत दिनों से।”

(५)

प्रणय की पहली रात थी। चारों ओर सन्नाटा था। केवल दानों मियों के हृदयों में अभिलाषाएँ लहरा रही थीं। चारों ओर अनुराग नयी चाँदनी टिटकी हुई थी, और उसकी शम्यमयी छाया में वर और वन प्रेमालाप कर रहे थे।

सहसा खबर आई कि शत्रुओं की एक सेना मिले भी श्रोग बड़ी चली आती है। चिन्ता चौक पड़ी, रत्नसिंह खड़ा हो गया, और पट्टी स लटकती हुई तनवार वतार ली।

चिन्ता ने उसकी ओर कातर-स्नेह की दृष्टि से देखकर कहा— “कुछ खादमियों को रुधर भेज दो, तुम्हारे जाने की क्या जरूरत है ?”

रत्नमिह ने घट्टक कंधे पर रखते हुए कहा— “मुझे भय है कि श्रव की वे लोग दही सख्या में आ रहे हैं।”

चिन्ता— “तो मैं भी चलींगी।”

“नहीं, मुझे आशा है, वे लोग ठहर न सकेंगे। मैं एक ही धावे में उनके कदम उखाड़ दूँगा। यह ईश्वर की इच्छा है कि हमारी प्रणय-रात्रि विजय-रात्रि हो।”

“न-जाने क्यों मन कातर हो रहा है। जाने दनं को जी नहीं चाहता।”

रत्नमिह ने हल भरकर, अनुरक्त आग्रह से विह्वल होकर चिन्ता को गले लगा लिया, और बोले— “मैं सवेरे तक लाट आजगा प्रिये।”

चिन्ता पति के गले में हाथ डालकर आँखों में आँसू भरे हुए बोली— “मुझे भय है, तुम बहुत दिनों में लौटोगे। मेरा मन तुम्हारे साथ रहेगा। जाओ, पर रोज खबर भेजते रहना। तुम्हारे पैरों पटती हूँ, अक्सर का विचार करते धावा करना। तुम्हारी खादत है कि शत्रु देखते ही भाकुल हो जाते हो, और जान पर खेलकर दूट पटते हो। तुमसे मेरा यह अनु-रोध है कि अक्सर देखकर काम करना। जाओ, जिस तरह पीठ दिखाते हो, वसा तरह मुँह दिखाओ।”

चिन्ता का हृदय कातर हो रहा था। वहाँ पहले कदल विजय-लालसा का आधिपत्य था अब भोग-लालसा की प्रधानता थी। वही घर बना जो तिहिनी की तरह गरजकर शत्रुओं के कलेजे को पा देती थी, आज हल्की हृदय हो रही थी कि जब रत्नमिह छोटे पर सवार हुआ, तो उसे पहली मुहाल-आसना से मन ही-मन देदी की मनो-निर्षा

कर रही थी। जब तक वह वृक्षों की ओट में छिप न गया, वह सड़ी उसे देखती रही फिर वह किले के सबसे ऊँचे बुर्ज पर चढ़ गई, और वहाँ उसी तरफ ताकती रही। वहाँ शून्य था, पहाड़ियों ने कभी का रत्न सिंह को अपनी ओट में छिपा लिया था, पर चिन्ता को ऐसा जान पड़ता था कि वह सामने चले जा रहे हैं। जब ऊपा की लोहित छवि वृक्षों की आड़ से झाँकने लगी, तो उसकी मोह विस्मृति टूट गई। मालूम हुआ, चारों ओर शून्य है। वह रोती हुई बुर्ज से उतरी, और शय्या पर मुँह टाँपकर रोने लगी।

(६)

रत्नसिंह के साथ मुशकिल से सौ आदमी थे, किन्तु सभी मँजे हुए, शवसर और संख्या को तुच्छ समझनेवाले, अपनी जान के दुश्मन। वे बीरोटकाम से भरे हुए एक वीर-रस-पूर्ण पद गाते हुए बोड़ों का बड़ाए चले जाने थे —

बाँकी तेरी पाग विपाही, इसकी रगना लाज।

तेग-तवर कुठ काम न आवे, बापतर डाल व्यर्थ हो जावे।

रगियो मन में लाग, विपाही बाँकी तेरी पाग।

उसकी रगना लाज।

पहाड़ियाँ इन वीर-स्वरों से गँज रही थीं, घोड़ों की टाप ताकते रही थीं। यहाँ तक कि रात बीन गई, सूर्य ने अपनी लाल आँखें मोर दीं, और इन वीरों पर अपनी स्वर्णच्छटा की वर्षा करने लगा।

वहीं रन्मय प्रकाश में गजुओं की सेना एक पहाड़ी पर पड़ाव डाले हुए नजर आई।

रत्नसिंह मिर मुक़ाण, वियोग व्यथित हृदय को दबाए, मंद गति से पीटे-पीटे चला आता था। कदम आगे बढ़ता था, पर मन पीटे रहता

जुधा था। बुन्देलों में निराशा का अलौकिक बल था। खूब लड़े, पर क्या मजाल कि कदम पीछे हटे। उनमें अथ ज़रा भी संगठन न था। जिससे जितना आगे बढ़ते बना, बढ़ा। अतः क्या होगा, इसकी किसी को चिन्ता न थी। कोई तो शत्रुओं की सफ़े चौरता हुआ सेनापति के समीप पहुँच गया, कोई उसके हाथों पर चढ़ने की चेष्टा करते मारा गया। उनका अमानुषिक साहस देखकर शत्रुओं के मुँह से भी वाह-वाह निकलती थी। लेकिन ऐसे योद्धाओं ने नाम पाया है, विजय नहीं पाई। एक घंटे में रंगमंच का परदा गिर गया, तमाशा खतम हो गया। एक छाँधी थी, जो आई और वृक्षों को उखाड़ती हुई चली गई। संगठित रहकर ये ही मुट्ठी-भर आदमी दुश्मनों के दाँत खट्टे कर देते, पर जिस पर संगठन का भार था, उसका कहीं पता न था। विजयी मरदों ने एक-एक लाश ध्यान से देखी। रत्नसिंह उनकी आँखों में खटकता था। सती पर उनके दाँत लगे थे। रत्नसिंह के जीते-जी उन्हें नींद न आती थी। लोगों ने पहाटी की एक-एक चट्टान का मथन कर डाला, पर रत्न न टाथ आया। विजय हुई, पर अश्रुती।

(७)

चिन्ता ये हृदय में आज न-जाने क्यों, भाँति-भाँति की शकाएँ बट रही थीं। एतः कभी रतनी दुर्बल न थी। बुन्देलों की हार ही क्यों होगी, इसका कोई कारण तो यह न बता सकती थी, पर वह नाचना उसने दिवह हृदय से किसी तरह न निकलनी थी। उस अभागिन के भाग्य का प्रेम का सुख भोगना खिन्ना होता, तो क्या बदरन ही से माँ मर जाता, पिता के साथ वह इन दूमना पटना, छोटी और बन्दों में रहना पड़ता। और यह आशय भी तो बहुत दिन न रहा। पिता भी मुँह मोड़कर गए दिए। सब से इसे एक दिन भी तो कारण से दटना नहीं

न हुआ। विधना क्या अब अपना क्रूर कौतुक छोड़ देगा? आह! उसके दुर्बल हृदय में इस समय एक विचित्र भावना उत्पन्न हुई—इसपर उसके प्रियतम को आज सकुशल लावे, तो वह उसे लेकर किसी दूर के गाँव में जा बसेगी, पति देव की सेवा और आराधना में जीवन सफल करेगी। इस नग्नम से सदा के लिए मुँह मोड़ लेगी। आज पहली बार नारीत्व का भाव उसके मन में जाग्रत हुआ।

मध्याह्न हो गई थी, सूर्य भगवान् किसी छारे हुए सिपाही की भाँति मस्तक झुकाए कोई श्राद्ध योग रहे थे। मद्रमा एक सिपाही नगे मिर नंगे पाँव, निश्शस्त्र, उसके सामने आकर गड़ा हो गया। चिन्ता पर वज्र पात हो गया। एक क्षण तक मर्माहत-मी बैठी रही। फिर उठकर प्रसंगी हुई सैनिक के पास आई, और आतुर स्वर में पूछा—“कौन कौन बचा?”

सैनिक ने कहा—“कोई नहीं।”

“कोई नहीं!, कोई नहीं!”

चिन्ता मिर पकड़कर भूमि पर बैठ गई। सैनिक ने फिर कहा—
“मरहटे समीप आ पहुँचे।”

“समीप आ पहुँचे!”

“बहुत समीप!”

“तो नुरत चिता तैयार करो। समय नहीं है।”

“अभी हम लोग तो मिर कटाने को शक्तिर ही हैं।”

“तुम्हारी जैसी बच्चा। मेरे कर्तव्य का तो यही जन्म है।”

“किन्ना बन्द करके हम महीनों लड सकते हैं।”

‘तो जाकर लडो। मेरी लडाईं अब किसी से नहीं।’

एक ओर अन्वकार प्रकाश को पैगै-नते कुचरता घना आता घ
दुमरी और विनयी मरहटे लहराने हुए घेनों को और किसी में विन

रत्नसिंह सिर पीटकर बोला—“हाय प्रिये ! तुम्हें क्या हो गया है मेरी ओर देखती क्यों नहीं, मैं तो जीवित हूँ ।”

चिता से आवाज़ आई—‘ तुम्हारा नाम रत्नसिंह है, पर तुम मेरे रत्नसिंह नहीं हो ।’

“तुम मेरी तरफ़ देखो तो, मैं ही तुम्हारा दास, तुम्हारा उपासक, तुम्हारा पति हूँ ।”

“मेरे पति ने वीर-नाति पाई ।”

“हाय, कैसे समझाऊँ ! अरे लोगो, किसी भाँति अग्नि को शांत करो । मैं रत्नसिंह ही हूँ प्रिये ! क्या तुम मुझे पहचानती नहीं हो ?”

अग्नि शिखा चिन्ता के मुख तक पहुँच गई । अग्नि में कमल खिल गया । चिन्ता स्पष्ट स्वर में बोली—“खूब पहचानती हूँ । तुम मेरे रत्नसिंह नहीं । मेरा रत्नसिंह सचा शूर था । वह आत्म-रक्षा के लिए, इस तुम्हारे देह को बचाने के लिए, अपने क्षत्रिय-धर्म का परित्याग न कर सकता था । मैं जिस पुरुष के घरणों की दासी बनी थी, वह देवलोक में विरात्र मान है । रत्नसिंह को बदनाम मत करो । वह वीर राजपूत था, रणक्षेत्र से भागनेवाला कायर नहीं ।”

अन्तिम शब्द निकले ही थे कि अग्नि की ज्वाला चिन्ता के तिर के ऊपर जा पहुँची । फिर एक क्षण में वह अनुपम रूप-राशि, वह आदर्श धीरता की उपासिका, वह सच्ची सती अग्नि-राशि में विलीन हो गई ।

रत्नसिंह चुपचाप, इतनुद्धि-सा खड़ा यह शोकमय दृश्य देखा रहा । फिर अचानक एक उण्डी साँस खींचकर उसी चिता में कूद पड़ा ।

हिंसा परमो धर्मः

(१)



नियामें कुछ ऐसे लोग भी होते हैं, जो किसी के नौकर न होते हुए सबके नौकर होते हैं। जिन्हें कुछ अपना खास काम न होने पर भी सिर उठाने की फुरसत नहीं होती। जामिद इसी श्रेणी के मनुष्यों में था। बिल्कुल बेपिच्छ, न किसी से दोस्ती, न किसी से दुश्मनी। जो जरा हँसकर बोला, उसका बे-दाम का गुलाम हो गया। बेकाम का काम करने में उसे मजा आता था। गाँव में कोई बीमार पड़े, वह रोगी की सेवा-शुश्रूषा के लिए हाजिर है। कहिए, तो आधी रात को हकीम के घर खला जाय, इसी जड़ी मूटी की तलाश में मंजिला की तक छान आवे। मुमकिन न था कि वह किसी गरीब पर अत्याचार होते देखे और चुप रह जाय। फिर चाहे कोई उसे मार ही लखे, वह हिमायत करने से बाज न आता था। ऐसे लैकड़े ही नाकें उसके सामने आ चुके थे। कास्टंपिलों से घ्राण दिन उसकी उठ-टाट होती ही रहता थी। इसी लिए लोग उसे बौद्ध समझने थे। जो बात भी यही थी। जो प्रादमों किसी का बोझ भारी देखकर, उनसे जानकर, अपने सिर पर ले ले, किसी का टप्पर उठाने या भाग बुझाने के लिए कौत्सी दौड़ा खला जाय, उसे समझदार जोन कहेगा ? तारास यह कि उसका जान से दूसरों को चाहे कितना ही फायदा पहुँचे, अपना कोई अकार न होता था यहाँ तक कि वह रोटियों के लिए भी दूसरों का अनाज या दवागाना तो बट था, और अपना नाम दूसरे छत्रे थे।

(२)

आखिर जब लोगों ने बहुत धिक्कारा—क्यों अपना जीवन नष्ट कर रहे हो, तुम दूसरों के लिए मरते हो, कोई तुम्हारा भी पूछनेवाला है? अगर एक दिन बीमार पड़ जाओ, तो कोई चुबलू-भर पानी न दे, जब तक दूसरों की सेवा करते हो, लोग ख़ैरात समझकर खाने को दे देते हैं, जिस दिन आ पड़ेगी, कोई सीधे-मुँह बात भी न करेगा, तब जामिद की आँखें खुलीं। वरतन-भाँड़ा कुछ था ही नहीं। एक दिन उठा, और एक तरफ की राह ली। दो दिन के बाद एक शहर में जा पहुँचा। शहर बहुत बड़ा था। महल आसमान स बातें करनेवाले। सड़कें चौड़ी और साफ। बाज़ार गुलजार, मसजिदों और मन्दिरों की सख्या अगर मकानों से अधिक न थी, तो कम भी नहीं। देहात में न तो कोई मसजिद थी, न कोई मन्दिर। मुसलमान लोग एक चबूतरे पर नमाज पढ़ लेते थे। हिन्दू एक वृक्ष के नीचे पानी चढ़ा दिया करते थे। नगर में धर्म का यह माहात्म्य देखकर जामिद को बड़ा कुतूहल और आनन्द हुआ। उसकी दृष्टि में मजहब का जितना सम्मान था, उतना और किसी सांसारिक वस्तु का नहीं। वह सोचने लगा, ये लोग कितने ईमान के पक्के, कितने सत्यवादी हैं। इनमें कितनी दया, कितना विवेक, कितनी सहाय-भूति होगी। तभी तो खुदा ने इन्हें इतना माना है। वह हर आने-गाने वाले को श्रद्धा की दृष्टि से देखता और उसके सामने विनय से सिर झुकाता था। यहाँ के सभी प्राणी उसे देवता तुल्य मालूम होते थे।

घूमते घूमते सँभ हो गईं। वह थककर एक मंदिर के चबूतरे पर जा बैठा। मंदिर बहुत बड़ा था, ऊपर सुनहला कलश चमक रहा था। चगमोहन पर सगरमर के चोके जड़े हुए थे, मगर प्राँगन में जगद गण्ड गोबर और कूड़ा पड़ा था। जामिद को गद्गली से चिढ़ थी। देवालय

की यह दशा देखकर उससे न रहा गया। इधर-उधर निगाह बौड़ाई कि कहीं भाड़ू मिल जाय, तो साफ कर दूँ। पर भाड़ू कहीं नजर न आई। विवश होकर उसने अपने दामन से चबूतरे को साफ करना शुरू कर दिया।

जरा देर में भक्तों का जमाव होने लगा। उन्होंने जामिद को चबूतरा साफ करते देखा, तो आपस में बातें करने लगे—

“है तो मुसलमान !”

“मेहतर होगा।”

“नहीं, मेहतर अपने दामन से सफाई नहीं करता। कोई पागल मालूम होता है।”

‘उधर का भेदिया न हो।’

‘नहीं, चेहरे से तो बड़ा गरीब मालूम होता है।’

‘इमननिजामी का कोई मुरीद होगा।’

‘अजी, गोबर के छालस स सफाई कर रहा है। कोई भठियारा होगा। (जामिद स) गोबर मत ले जाना वे, समझा ? कहाँ रहता है?’

‘परदेसा गुसाफिर हूँ, साहब। मुझे गोबर लेकर क्या करना है। ठाकुरजी का मंदिर देखा, तो आकर बैठ गया। हूडा पडा हुआ था, नने सोधा, वसतिमा लीज आते होंगे, सफाई करने लगा।’

‘तुम तो मुसलमान हो न?’

‘ठाकुरजी तो सपके ठाकुरजी ह—कदा हिन्दू, क्या मुसलमान।’

‘तुम ठाकुरजी को मानते हो?’

‘ठाकुरजी का पान न मानेगा, साहब। जितने पैदा किया, उतने न मरूँगा तो फिर तुँवा।’

जयों व सबाह होते लया—

“देहाती है।”

“फाँस लेना चाहिए, जाने न पावे।”

(३)

जामिद फाँस लिया गया। उसका आदर-सत्कार होने लगा। एक हवादार मकान रहने को मिला। दोनों वक्त उत्तम पदार्थ खाने को मिलने लगे। दो-चार आदमी हरदम उसे घेरे रहते। जामिद को भजन सूत्र याद थे। गला भी अच्छा था। वह रोज मंदिर में जाकर कीर्तन करता। भक्ति के साथ स्वरलालित्य भी हो, तो फिर क्या पूजा ? लोगों पर उसके कीर्तन का बड़ा असर पड़ता। कितने ही लोग सगीत के लोभ से ही मंदिर में आने लगे। सबको विश्वास हो गया कि भगवान् ने यह शिकार चुनकर भेजा है।

एक दिन मंदिर में बहुत-से आदमी जमा हुए। आँगन में फस विछाया गया। जामिद का मिर मुडा दिया गया। नए कपडे पहनाए गए। हवन हुआ। जामिद के हाथों से मिठाई बँटवाई गईं। वह अपने आश्रय-दाताओं की उदारता और धर्मनिष्ठा का और भी कायल हो गया। ये लोग कितने मज्जन हैं, मुझ जैसे फटे-हाल परदेशी की इतनी यातिर ! इसी को सच्चा धर्म कहते हैं। जामिद को जीवन में कभी इतना सम्मान न मिला था। यहाँ वही सैठानी युवक, जिसे लोग गीउन कहते थे, भक्तों का सिरमौर बना हुआ था। सैठों ही आदमी केवल इसके दर्शनों को आते थे। उसही प्रकार विद्वत्ता की कितनी ही क्यारें प्रचलित हो गईं। पत्रों में यह समाचार निकला कि एक बड़े मालिम मौलवी साहब की शुद्धि हुई है। सीधा-सादा जामिद इस सम्मान का रहस्य कुछ न समझता था। ऐसे धर्म-परायण, महदय प्राणियों के लिए वह क्या कुछ न करता ? वह नित्य पूजा करता, भजन गाता। उसके लिए

यह कोई नई बात न थी। अपने गाँव में भी वह बराबर सत्यनारायण की कथा में बैठा करता था। भजन-कीर्तन किया करता था। अंतर यही था कि देहात में उसकी क़दर न थी। यहाँ सब उसके भक्त थे।

एक दिन जामिद कई भक्तों के साथ बैठा हुआ कोई पुराण पढ़ रहा था, तो क्या देखता है कि सामने सड़क पर एक बलिष्ठ युवक माथे पर तिलक लगाए, जनेऊ पहने, एक बूढ़े दुर्बल मनुष्य को मार रहा है। बुड्ढा रोता है, गिड़गिड़ाता है, और पैरों पढ़-पढ़ के कहता है कि महाराज, मेरा कुसूर माफ़ करो, किन्तु तिलकधारी युवक को उस पर जरा भी दया नहीं आती। जामिद का रक्त खौल उठा। ऐसे दृश्य देख कर वह शांत न बैठ सकता था। तुरन्त कूद कर बाहर निकला, घोर युवक के सामने आकर बोला—हम बुड्ढे को क्यों मारते हो भाई? मुझे इस पर जरा भी दया नहीं आती?

युवक—मैं मारते मारते हफकी हड्डियाँ तोड़ दूँगा।

जामिद—आगिर इसने क्या कुसूर किया है? कुछ नास्तन तो हो।

युवक—इसकी सुगी हमारे घर में घुस गई थी, और सारा घर गदा कर आई।

जामिद—तो क्या इसने सुगी को सिखा दिया था किन्तु न्दारा घर गदा कर आवे?

बुड्ढा—सुदायद, मैं तो इसे बराबर खाचे में टाँके रहता हूँ। आज गफ़्त हो गई। कटता हूँ, महाराज, कुसूर माफ़ करा, नगर नहीं मानत। दुःख, मारते-मारते अचमरा कर दिया।

युवक—अनी वहीं नारा है, अब नादेंगा—खोदकर गाड़ दूँगा।

जामिद—खोदकर गाड़ दोगे भाई साहब तो तुम ना रॉन न्देंदें दोगे। लमक २.०५ अगार फिर हाथ उठाया, तो अज्जा न दोगा।

जवान को अपनी ताक़त का नशा था। उसने फिर बुड्ढे को चाँटा लगाया। पर चाँटा पड़ने के पहले ही जामिद ने उसकी गर्दन पकड़ ली। दोनों में मल्लयुद्ध होने लगा। जामिद करारा जवान था। युवक को पटकनी दी तो चारों खाने चित गिर गया। उसका गिरना था कि भक्तों का समुदाय, जो अब तक मंदिर में बैठा तमाशा देख रहा था, लपक पड़ा और जामिद पर चारों तरफ़ से चोटें पड़ने लगीं। जामिद की समझ में न आता था कि लोग मुझे क्यों मार रहे हैं। कोई कुछ नहीं पूछता। तिलकधारी जवान को कोई कुछ नहीं कहता। वस, जो आता है, मुझी पर हाथ साफ़ करता है। आखिर वह बेदम होकर गिर पड़ा। तब लोगों में जातें होने लगीं।

“दगा दे गया !”

“धत् तेरी जात की ! इन म्लेच्छों से भलाई की आशा न रखनी चाहिए। लौवा कौवा ही के साथ मिलेगा। कमीना जय करेगा, कमीना पन। इसे कोई पूछता न था, मंदिर में भाड़ू लगा रहा था। देह पर कपड़े का तार भी न था, हमने इसका इतना सम्मान किया, पशु से आदमी बना दिया, फिर भी अपना न दुआ !”

“इनके धर्म का तो मूल ही यही है !”

जामिद रात-भर सडक के किनारे पड़ा दर्द से कराहता रहा। उसे मार खाने का दुःख न था। ऐसी यातनाएँ वह कितनी बार भोग चुका था। उसे दुःख और आश्चर्य केवल इन बात का था कि इन लोगों ने क्यों एक दिन मेरा इतना सम्मान किया, और क्यों आज अकारण ही मेरी इतनी दुर्गति की ? इनकी वह सज्जता जान कहाँ गई ? मैं तो बड़ी हूँ। मैंने कोई झुसर भी नहीं किया। मैंने तो बड़ी किया, जो ऐसी दशा में सभी को करना चाहिए। फिर इन लोगों ने मुझ पर क्यों इतना अत्याचार किया ? देवता क्यों राक्षस बन गए ?

वह रात-भर इसी उलझन में पड़ा रहा। प्रातःकाल उठकर एक तरफ की राह ली।

(४)

जामिद अभी थोड़ी ही दूर गया था कि वही बुड्ढा उसे मिला। उसे देखते ही वह बोला—कसम खुदा की, तुमने कल मेरी जान बचा दी। सुना, जालिमों ने तुम्हें बुरी तरह पीटा। मैं तो मांका पाते ही निकल भागा। अब तक कहाँ ये? यहाँ लोग रात ही से तुमसे मिलने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। काजी साहब रात ही को तुम्हारी तलाश में निकले थे, मगर तुम न मिले। फल हम दोनों अकेले पड़ गए थे। दुश्मनों ने हमें पीट लिया। नमाज का वक्त था, यहाँ सब लोग मजिद में थे। अगर जरा भी खबर हो जाती, तो एक हजार लठेत पहुँच जाते। तब आटे दाल का भाव मालूम होता। कसम खुदा की, आज से मैंने तीन कोरी सुगियाँ पाली हैं। देखा, पण्डितजी महाराज जब क्या करते हैं? कसम खुदा की, काजी साहब ने कहा है, अगर वह लोडा जरा भाँपें दिपावे, तो तुम आकर मुकसे कहना। या तो बचा पर टोटकर भागने, या दूना पसला तोड़ कर रख दी जायगी।

जामिद वाँ लिए हुए वह बुड्ढा काजी जोरावरटुसैन के दरवाजे पर पहुँचा। काजी साहब बजू कर रहे थे। जामिद को देखते ही दोड़कर गले लगा लिया, और बोले—बल्लाह! तुम्हें आँवे हूँ उरही जी। तुमने अबले इतना कारिगरो के दात ऊँचे कर दिए। अबो न हो, मोनिन का मन ह। कारिगरो को हनीवन क्या। सुना, लव-के सब तुम्हारी मुद्दि परत नारो ये। मगर तुमने उनके सारे मनसुमे पलट दिए। इस्लाम को केत दा परदि तो का जस्तत हो। तुम्ही जेव दावदारो ने इस्लाम का नाम राखत है। अबता यही दुई कि तुमने एक नद ने नद तक हर नदी

क्रिया । शादी हो जाने देते, तब मजा आता । एक नाजबीन साब लाते, और दौलत मुफ्त । वग्लाह ! तुमने उजलत कर दी ।

दिन भर मक्कों का ताँता लगा रहा । जामिद को एक नजर देखने का सबको शोक था । सभी उसकी हिम्मत, जोर और मजहबी जोश की प्रशंसा करते थे ।

(५)

पहर रात गीत चुकी थी । मुसाफ़िर्नों की आमदरफत कम हो चली थी । जामिद ने क़ाजी सादब से धर्म-ग्रन्थ पढ़ना शुरू किया था । उन्होंने उसके लिए अपने जगल का कमरा खाली कर दिया था । वह क़ाजी सादब से समझ लेकर आया, और मोने जा रहा था कि मइसा उमे दर-वाजे पर एक ताँगे के रकने की आवाज सुनाई दी । क़ाजी सादब के मुरीद धक्कर आया करते थे । जामिद ने सोचा, कोई मुरीद आया होगा । नीचे आया, तो देना, एक ग़ी ताँगे से उतर कर बरामदे में लड़ी दे, और ताँगेवाला उसका अस्बाब उतार रहा है ।

महिला ने मक़ान को दूर-उधर देख कर कहा—नहीं जी, मुझे अच्छी तरह खयाल है, उनका मक़ान यह नहीं है । शायद तुम भूल गए हो ।

ताँगेवाला—हुज़ूर तो मानती ही नहीं । कह दिया कि मरू सादब मक़ान तबदील कर दिया है । ऊपर चलिए ।

सो ने कुछ क्लिक्कते हुए कहा— बुलाते क्यों नहीं ? आवाज दो !

ताँगेवाला—ओ सादब, आवाज मरा है । जय जानता हूँ सादब का यहो मक़ान है, तो नादक चिल्लाने से क्या फायदा ? बेचारे धाराम कर रहे होंगे । धाराम में लड्ड पड़ेगा । आप निमायातिर रहिए, चलिए, ऊपर चलिए ।

औरत ऊपर चली । पीछे-पीछे तांगेवाला असबाब लिपू हुपू चला ।
जामिद गुम शुम नीचे खड़ा रहा । यह रहस्य उसकी समझ में न आया ।

तांगेवाले की आवाज़ सुनते ही काज़ी साहब छत पर निकल आए,
और एक औरत को आते देख कमरे की खिड़कियाँ चारों तरफ़ से बंद
करके सूँठी पर लटकती हुई तलवार उतार ली, और दरवाज़े पर आकर
पडे हो गए ।

औरत ने जीना तय करके ज्यों ही छत पर पैर रखा कि काज़ी
साहब को देख कर भिन्नकी । वह तुरत पीछे की तरफ़ मुड़ना चाहती
थी कि काज़ी साहब ने लपक कर उसका हाथ पकड़ लिया, और अपने
कमरे में घसीट लाए । इसी बीच में जामिद और तांगेवाला, ये दोनों
भी ऊपर आ गए थे । जामिद यह दृश्य देख कर विस्मित हो गया था ।
रहस्य और भी रहस्यमय हो गया था । यह विद्या का सगर, यह न्याय
का भांडार, यह नीति, धर्म और दर्शन का आगार, इस समय एक
अपरिचित महिला के ऊपर यह घोर अत्याचार कर रहा है । तांगेवाले के
साथ वह भी काज़ी साहब के कमरे में चला गया । काज़ी साहब तो ली
के दोनों हाथ पकड़े हुए थे । तांगेवाले ने दरवाज़ा बंद कर दिया ।

महिला ने तांगेवाले की धोर सूत-नरी आँखों से देख कर कहा—
तू मुझे यहाँ क्यों लाया ?

काज़ी साहब ने तलवार चमका कर कहा—पहले धारान से उँट
जाओ, सब कुछ भादूम हो जायगा ।

औरत तुम तो मुझे कोई नालची नादूम होते हो ! क्या तुम्हें खुदा
न पहा सिखाया है कि पराई बट्ट बट्टियों को जबरदस्ती पर में बंद करके
उनका आबल बिगाओ ?

जाज़ा—हाँ, खुदा का यही दुस्न है कि बग़ि़तों को, निब तरह

मुमकिन हो, इस्लाम के रास्ते पर लाया जाय । मगर सुगी से न आवे, तो जत्र से ।

औरत—इसी तरह अगर कोई तुम्हारी बहू-बेटी पकड़ का ब-आवरू करे, तो ?

काजी—हो ही रहा है । जैसा तुम हमारे साथ करोगे, वैसा ही हम तुम्हारे साथ करेंगे । फिर हम तो बे-आवरू नहीं करते, बिल्कूल अपने ना-हव में शामिल करते हैं । इस्लाम कबूल करने से आवरू बढती है, बढती नहीं । हिन्दू-कौन ने तो हमें मिटा देने का बीडा उठाया है । बड़-इम सुक से हमारा नियान मिटा देना चाहती है । जोखे से, लाज-मे, जत्र से मुसलमानों को बेदीन बनाया जा रहा है तो क्या मुसलमान ये सुँठ ताकेंगे ?

औरत—हिन्दू कभी ऐसा अत्याचार नहीं कर सकता । मभव है, तुम लोगों की शरारतों से तग आकर नौचे दर्जे के लोग इस तरह बदला लेने लगे हों । मगर अब भी कोई सच्चा हिन्दू इसे पमद नहीं करता ।

काजी साहब ने कुछ सोचकर कहा—बेशक, पहले इस तरह की शरारतें मुसलमान शोइदे किया करते थे । मगर शरीफ लोग इन दरकनों को बुला समझने थे, और अपने इमकान-भर रोकने की कोशिश करते थे । तालीन और तदनीय की तरफकी के साथ कुछ दिनों में यइ गुण्डामन ज़रूर गावज हो जाता । मगर अब तो सारी हिन्दू-कौन हमें निगलने के लिए तैयार बैठी हुई है । फिर हमारे लिए और रास्ता ही कान मा है । हम कमज़ोर हं, इमलिए हमें नजूर होकर अपने को कायम रखने के लिए दगा से जान लेना पडता है । मगर तुम इतना बपराती क्यों हो ? तुम्हें यहाँ किसी बात की तकलीफ न होगी । इस्लाम औरतों के हक का नितना लिहाज करता है, रतना और कोई मजइब नहीं करता ।

मुझ आपके रूप में इस समय अपने इष्टदेव के दर्शन हो रहे हैं। मेरी ज़बान में इतनी ताकत नहीं कि आपका शुक्रिया अदा कर सकूँ। घाइए, बैठ जाइए।

जामिद—जी नहीं, अब मुझे इजाजत दीजिए।

पंडित—मैं आपकी इस नेकी का क्या बदला दे सकता हूँ ?

जामिद—इसका बदला यही है कि इस शरारत का बदला किसी गरीब मुसलमान से न लीजिएगा मेरी आपसे यही दरखास्त है।

यह कह कर जामिद चल पड़ा हुआ, और उस छँपेरी रात के सन्नाटे में शहर के बाहर निकल गया। उस शहर की विपाक वायु में साँस लेते हुए उसका दम घुटना था। वह जल्द से जल्द शहर से भाग कर अपने गाँव में पहुँचना चाहता, जहाँ मजहब का नाम महानुभूति, प्रेम और मोहार्द था। धर्म और धार्मिक लोगों से उसे पृणा हो गई थी।

वहिष्कार

(३)



एडित ज्ञानचन्द्र ने गोविन्दी की ओर सतृष्ण नेत्रों में देखकर कहा—सुनो ऐसे निर्दयी प्राणियों में ज़रा भी महानुभूति नहीं है। इस बर्बरता की भी कोई इद है कि, जिसके माथ तीन वर्ष तक जीवन के सुख भोगे, उसे एक ज़रामो बात पर पर म निकाल दिया।

गोविन्दी ने आँसू नीचे करके पूछा—घाविर बात क्या हुई थी ?

ज्ञान०—कुछ भी नहीं। ऐसी बातों में कोई बान हाती है। शिक्षा यत है कि काळिन्दी ज़बान की तेज है। तीन साल तक जवान की नेत्र न थी, आज जवान की तेज हो गई। कुछ नहीं, कोई दूसरी चिड़िया नज़र आई होगी। उसके छिपे पित्तरे को पाली करना आवश्यक था। उस, यह शिक्षायत निकल आई। मेरा बस चले तो ऐसे दुष्टों को गोली मार दूँ। सुनो कई बार काळिन्दी से बानचीत करने का व्यवहार मिला है। मैंने ऐसी हँसमुख दूसरी स्त्री स्त्री नहीं देखी।

गोविन्दी—तुमने सोमदत्त को ममकाया नहीं ?

ज्ञान०—ऐसे लोग समझाने से नहीं मानते। यह बात का आदमी है, बातों की उमे क्या परवा ? मेरा ता यह विचार है कि, जिसके पद पर सम्भव हो गया, फिर चाहे वह अरजो हो या दुरी, उनके माथ जीवन भर निर्वाह करना चाहिए। मैं तो कहता हूँ, अगर स्त्री के कुछ में कोई दोष जो निकट थावे तो भी समा से काम लेना चाहिए।

गोविन्दी ने कातर नेत्रों से देवकर कहा—ऐसे आदमी जो बहुत कम ही हैं।

जान०—समझ ही में नहीं आता कि, जिसके साथ इतने दिन हँसे-बोले, जिसके प्रेम की स्मृतियाँ हृदय के एक एक अणु में समाई हुई हैं, उसे दर दर टोकरें खाने को कैसे छोड़ दिया। कम से कम इतना तो करना चाहिये था कि, उसे किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देते और उसके निर्वाह का कोई प्रबन्ध कर देते। निर्दयी ने इन तरह घर से निकाला जैसे कोई कुत्ते को निकाले। बेचारी गाँव के बाहर बैठी रो रही है। कौन कह सकता है कहाँ जायगी। शायद मायके में भी कोई नहीं रहा। सोमदत्त के दर के मारे गाँव का कोई आदमी उनके पास भी नहीं जाता। ऐसे बगड़ का क्या टिकाना जो अपनी स्त्री का गुरुघा, वह दूसरे का क्या होगा। उसकी दशा देखकर मेरी छाँकों में तो आंसू भर आए। जी में तो आया कहीं—बहन, तुम मेरे घर चलो। नगर तब तो सोमदत्त मेरे प्रार्थों का गाढ़क हो जाता।

गोविन्दी—तुम जरा जाकर एक बार फिर समझाओ। अगर वह किसी तरह न मानें तो कालिन्दी को लेते घाना।

ज्ञान०—जाऊँ ?

गोविन्दी हाँ, अवश्य जाओ। अगर सोमदत्त कुछ बरी-खोरी भी कहे तो सुन लेना।

ज्ञानधन् ने गोविन्दी को गले लगाकर कहा—तुम्हारे हृदय में बड़ी दया है गोविन्दी। लो, जाता हूँ। अगर सोमदत्त न माने तो कालिन्दी ही लो लेता आऊँगा। अभी बहुत दूर न गई होगी।

(२)

तीन वर्ष बाद १९। गोविन्दी एक अच्छे जी में हो गई। कालिन्दी अभी तक दया पर मे है। उसके बति ने दूसरा विवाह कर लिया है। गोविन्दी और कालिन्दी में बहनों का सा जेन है। गोविन्दी ने बड़े बहा

द्विजजोईं करती रहती है। वह इसकी कल्पना भी नहीं करती कि, यह कोई ग़ैर है और मेरी रोटियों पर पड़ी हुई है। लेकिन सोमदत्त को कालिन्दी का यहाँ रहना एक भ्राँस नहीं माता। वह कोई कानूनी काररवाई करने की तो हिम्मत नहीं रखता। और इम परिस्थिति में कर ही क्या सकता है—लेकिन ज्ञानचन्द्र का सिर नीचा करने के लिए अवसर खोजता रहता है।

सन्ध्या का समय था। ग्रीष्म की उष्ण वायु अभी तक विवहृत शान्त नहीं हुई थी। गोविन्दी गङ्गा-जल भरने गई थी और जल तट की शीतल निजंनता का आनन्द उठा रही थी। सहसा उसे सोमदत्त आता हुआ दिखाई दिया। गोविन्दी ने भ्राँचल से मुँह छिगा लिया और फलसा लेकर चलने ही को थी कि, सोमदत्त ने सामने आकर कहा—जरा ठहरो गोविन्दी, तुमसे एक बात कहना है। तुमसे यह पूछना चाहता हूँ कि, तुमसे कहूँ या जानूँ से।

गोविन्दी ने धीरे से कहा—उन्हीं से कह दीजिये।

सोम०—जी तो मेरा भी यही चाहता है, लेकिन तुम्हारी दीनता पर दया आती है। जिस दिन मैं ज्ञानचन्द्र से वह बात कह दूँगा, तुम्हें इस घर से निकलना पड़ेगा। मैंने मारी बातों का पता लगा लिया है। तुम्हारा बाप कौन था, तुम्हारी माँ की क्या दशा हुई, यह सारी क्या जानता हूँ। क्या तुम समझती हो कि, ज्ञानचन्द्र यह क्या सुनकर तुम्हें अपने घर में रखेगा? उसके विचार कितने ही स्वाधीन हों, पर जोती मक्खी नहीं निगल सकता।

गोविन्दी ने धरधर काँपते हुए कहा—जब आप सारी बातें जानते हैं तो मैं क्या कहूँ? आप जैसा उचित समझें करें। लेकिन मैंने तो आपके साथ कभी कोई बुराई नहीं की।

मोन०—तुम लोगों ने गाँव में मुझे कहीं मुँह दिखाने के योग्य नहीं रखा। तब पर कहती हो मैंने तुम्हारे साथ कोई बुराई नहीं की ! तीन साल से कालिन्दी को आश्रय देकर तुमने मेरी आत्मा को जो कष्ट पहुँचाया है वह मैं ही जानता हूँ। तीन साल से मैं इन्हीं किरा में था कि, कैसे हव अपमान का टण्ड लूँ। अब वह अबसर पाकर वैसे किसी तरह नहीं छोड़ सकता।

गोविन्दी—अगर आपकी यही इच्छा है कि, मैं यहाँ न रहूँ तो मैं चली जाऊँगी, आज ही चली जाऊँगी, लेकिन उनसे आप कुछ न कहिए। आपके पैरों पड़ती हूँ।

मोन०—कहाँ चली जाओगी ?

गोविन्दी—घर कहीं ठिकाना नहीं है तो गङ्गाजी तो हैं।

मोन०—नहीं गोविन्दी, मैं इतना निर्दयी नहीं हूँ। मैं केवल इतना ही चाहता हूँ कि, तुम कालिन्दी को अपने घर से निकाल दो। और मैं कुछ नहीं चाहता। तीन दिन का समय देता हूँ, अब सोच विचार लो। अगर कालिन्दी तीसरे दिन तुम्हारे घर से न निकली तो तुम जानोगे।

सायदत वहाँ से चला गया। गोविन्दी कलसा लिए मूर्ति की नाँति पजी रह गई। उसके लगभग कठिन समस्या था खड़ी हुई थी, वह थी कालिन्दी। घर में एक रा रह सकती थी। दोनों के लिए उस घर में स्थान न था। क्या कालिन्दी के लिए वह अपना घर, अपना स्वर्ग त्याग दोगी ? कालिन्दी भक्तनी है, पति ने उसे पटले ही छोड़ दिया है, वह नहीं पड़े ना सकती है, पर वह अपने माया/अपार अपार बच्चे को छोड़ कर नहीं जायगा ?

कालिन्दी से वह क्या करेगी ? जिसके साथ अपने दिनों तक रहने का तार रहा उसे क्या वह अपने घर से निकाल देता ? उनका

पूजा कालिन्दी से कितना हिला हुआ था, कालिन्दी उसे कितना चाहती थी। क्या उस परित्यक्ता दीना को वह अपने वर से निकाल देगी? इसके सिवा और उपाय ही क्या था? उसका जीवन अब एक स्वार्थी, दम्भी व्यक्ति की दया पर अवलम्बित था। क्या अपने पति के प्रेम पर वह भरोसा कर सकती थी? ज्ञानचन्द्र मरुद्वय थे, उदार थे, विचारशील थे, दृढ़ थे, पर क्या उनका प्रेम, अपमान, व्यग्य और वद्विष्कार जैसे आघातों को सहन कर सकता था?

(३)

उनी दिन से गोविन्दी और कालिन्दी में कुछ पार्यन्त सा विश्वास टूटने लगा। दोनों अब बहुत कम साथ बैठतीं। कालिन्दी पुष्पारती—बहन, आकर खाना खा लो। गोविन्दी कहती—तुम खा लो, मैं फिर पालूँगी। पहले कालिन्दी बालक को सारे दिन खिलाया करती थी, माँ के पास केवल दूध पीने जाता था। मगर अब गोविन्दी हरदम उसे अपने ही पास रखती है। दोनों के बीच में कोई दीवार खड़ी हो गई है। कालिन्दी बार बार सोचती है, यात्रकल मुझसे यह क्यों लूठी हुई है, पर उसे कोई कारण नहीं दिखाई देता। उसे भय हो रहा है कि, कदाचित् यह अब मुझे यहाँ नहीं रखना चाहती। इसी चिन्ता में उस गोते न्याया करता है किन्तु, गोविन्दी भी उससे कम चिन्तित नहीं है। कालिन्दी से वह स्नेह तोड़ना चाहती है, पर उसकी गठान मूर्ति देख कर उसके हृदय के टुकड़े हो जाते हैं। उनसे कुछ कह नहीं सकती। अवहेलना के शब्द मुँह से नहीं निकलते। कदाचित् उसे वर से जान देव कर वह रो पड़ेगी और उसे नगरदस्ती रोक लेगी। इसी द्वैत प्रेम में तीन दिन गुजर गए। कालिन्दी वर से न निकली। तीसरे दिन सन्ध्या समय सोमदत्त नदी के तट पर बड़ी देर तक पड़ा रहा। अन्त

का जब चारों ओर अँधेरा छा गया, तो वह धीरे धीरे घर की ओर चला गया। फिर भी पीछे फिर फिर कर जल-तट की ओर देखता जाता था। रात के दम वज्र गए हैं। अभी ज्ञानचन्द्र घर नहीं आए। गोविन्दी घबरा रही है। उन्हें इतनी देर तो कभी नहीं होती थी। आज इतनी देर कहाँ लगा रहे हैं? शक्का से उसका हृदय काँप रहा है।

महत्ता मरदाने कमरे की द्वार खुलने की आवाज़ आई। गोविन्दी दाँडी हुई बैठक में आई। लेकिन पति का मुख देखते ही उसकी सारी देह शिथिल पट गई। उस मुख पर हास्य था। पर, उस हास्य में भाग्य-तिरस्कार भलक रहा था। विधि-वाम ने पूरे स्वीधे-सादे मनुष्य को भी अपने क्रीडा कांशल के लिये चुन लिया, क्या यह रहस्य राने के योग्य था? रहस्य राने की वस्तु नहीं, हँसने ही की वस्तु है।

ज्ञानचन्द्र ने गोविन्दी की ओर नहीं देखा। कपड़े उतार कर सावधानी से अलगनी पर रखते, जूता उतारा और फर्श पर बैठकर एक पुस्तक के पन्ने पलटने लगे।

गोविन्दी ने उरते उरते कहा—आज इतनी देर कहाँ की। भोजन खाया हो रहा है।

ज्ञानचन्द्र ने फर्श की धोर ताकते हुए कहा—तुम लोग भोजन कर का मैं एक मित्र के घर खा आया हूँ।

गोविन्दी हसका आशय समझ गई। एक क्षण के बाद फिर वाली—
 पता, धोड़ा ही सा खा लो।
 जान—अब बिलकुल मुख नहीं है।
 गोविन्दी—तो मैं भी जाकर सो रहता हूँ।
 जान—तब अब गोविन्दी का घर देख कर कहा—क्यों? तुम क्यों न आती हो?

गोविन्दी—मैं तो तुम्हारी ही थाली का जूठन खाया करती हूँ।
इससे अधिक वह और कुछ न कह सकी। गला भर आया।

ज्ञानचन्द्र ने उसके समीप आकर कहा—मैं सच कहता हूँ गोविन्दी,
एक मित्र के घर भोजन कर आया हूँ। तुम जाकर खा लो।

(४)

गोविन्दी पलंग पर पड़ी चिन्ता, नैराश्य और विषाद के अपार सागर
में गोते खा रही थी। यदि कालिन्दी का उसने वहिष्कार कर दिया होता
तो आज उसे इस विपत्ति का सामना न करना पड़ता, किन्तु यह अमा-
नुषीय व्यवहार उसके लिए असाध्य था और इस दशा में भी उसे इसका
दुख न था। ज्ञानचन्द्र की ओर से यों विरस्कृत होने का भी उसे दुख न
था। जो ज्ञानचन्द्र नित्य धर्म और सज्जनता की डींगें मारा करता था
वही आज उसका हृत्तनी निर्दयता से वहिष्कार करता हुआ जान पड़ता
था, इस पर उसे लेशमात्र भी दुख, क्रोध या द्वेष न था। उसके मन
की केवल एक ही भावना आन्दोलित कर रही थी। वह अब इस पर मैं
कैसे रह सकती हूँ। अब तक वह इस घर की स्वामिनी थी, इसी लिए
न कि, वह अपने पति के प्रेम की स्वामिनी थी, पर अब वह उस प्रेम
से वञ्चित हो गई थी। अब इस घर पर उसका क्या अधिकार था। वह
अब अपने पति को मुँह ही कैसे दिखा सकती थी। वह जानती थी
ज्ञानचन्द्र अपने मुँह से उसके विरुद्ध एक शब्द भी न निकालेंगे पर,
उसके विषय में ऐसी बातें जान कर क्या वह अपने प्रेम कर सकते थे ?
कदापि नहीं, इस वक्त न जाने क्या समझ कर चुप रहे। सत्रों तूफान
उठेगा। हितने ही विचारशील हों, पर अपने समाज से निकाटा जाना
कौन पसन्द करेगा। त्रियों की सभार में कमी नहीं। मेरी जगद इतारों
मिथ जायेंगी। मेरी हिंसी को क्या परवा। अब यहाँ रहना बेहयाई है।

गास्त्रि कोई लाठी मार कर थोड़े ही निकाल देगा। इयादार के लिए माँख का इशारा बहुत है। मुँह से न कहें, मन की बात और भाव छेपे नहीं रहते। लेकिन मीठी निद्रा की गोद में सोए हुए शिशु को देख कर ममता ने उसके अशक्त हृदय को और भी कातर कर दिया। इस अपने प्राणों के आधार को वह कैसे छोड़ेगी ?

शिशु को उसने गोद में उठा लिया और खड़ी रोती रही। तीन साल कितने आनन्द से गुजरे। उसने समझा था इसी भाँति सारा जीवन कट जायगा। लेकिन उसके दुर्भाग्य में इससे अधिक सुख भोगना छिया ही न था। कर्ण वेदना में डूबे हुए ये शब्द उसके मुख से निकल आए— 'भगवान ! अगर तुम्हें इस भाँति मेरी दुर्गति करनी थी तो तीन साल पहले क्यों न की। उस वक्त यदि तुमने मेरे जीवन का अन्त कर दिया होता तो मैं तुम्हें धन्यवाद देती। तीन साल तक सौभाग्य के सुरम्य उद्यान में सीरभ, समीर और माधुर्य का आनन्द बठाने के बाद इन उद्यान ही को घगाड दिया।' हा ! जिन पौधों को उसने अपने प्रेम जल से सींचा था, वे अब निर्मल दुर्भाग्य के पैरों तले कितनी निष्ठुरता से कुचले जा रहे थे। ज्ञानचन्द्र के शील और स्नेह का स्मरण ध्याया तो बड़ रो पड़ी। श्रुति स्मृतियाँ आ आकर हृदय को मसोसने लगीं।

सहसा ज्ञानचन्द्र के आने से वह तँनल बैठी। कठोर से कठोर बानें सुनने के लिए उसने अपने हृदय को कडा कर लिया। किन्तु, ज्ञानचन्द्र के मुख पर रोष का चिह्न भी न था। उन्होंने आश्चर्य से पूछा—क्या तुम अभी तक सोई नहीं ? जानती हो कै बने हैं बारह से ऊपर हैं।

गायिन्दा ने सहसते हुए कहा—तुम भी तो खनी नहीं सोए।

ज्ञान—मैं न सोऊँ तो तुम भी न सोओ ? मैं न जाऊँ तो तुम भी न जानो, न बीमार पडूँ तो तुम भी बीमार पडो ? यह क्यों ? मैं तो

एक जन्म-पत्री बना रहा था। कल देनी होगी। तुम क्या करती रहीं, बोलो ?

इन शब्दों में कितना सरल स्नेह था ! क्या तिरस्कार के भाव इतने लज्जित शब्दों में प्रकट हो सकते हैं। प्रवञ्चकता क्या इतनी निमल हो सकती है ? शायद सोमदत्त ने अभी वज्र का प्रहार नहीं किया। अथवा न मिला होगा। लेकिन ऐसा है तो आज घर इतनी देर में क्यों आए ? भोजन क्यों न किया, मुझसे बोले तक नहीं, अर्सें लाल हो रही थीं। मेरी ओर आँस उठा कर देखा तक नहीं। क्या यह सम्भव है कि, इनका क्रोध शान्त हो गया हो ? यह सम्भावना की चरमसीमा से भी बाहर है। तो क्या सोमदत्त को मुझ पर दया आ गई, पत्थर पर दून जमी ? गोविन्दी कुछ निश्चय न कर सकी, और जिस भाँति गृह-सुख विहीन पथिक वृक्ष की छाँह में भी आनन्द से पात्र फैलाकर मोता है, उसी अव्यवस्था ही उसे निश्चिन्त बना देती है, उसी भाँति गोविन्दी मानविक व्यग्रता में भी स्वस्थ हो गई। मुसकुरा कर स्नेह-मृदुल स्वर में बोली—
तुम्हारी ही राह तो देख रही थी।

यह कहते कहते गोविन्दी का गला भर आया। व्यात्र के गाल में फड़-फड़ाता हुई चिड़िया क्या मीठे राग गा सकती है ? ज्ञानचन्द्र ने आवाज़ पर बैठकर कहा—भूटा रात, रोग तो तुम अत्र तक सो नाया करता थीं।

(५)

एक मठाद बीत गया, पर ज्ञानचन्द्र ने गोविन्दी से कुछ न पूछा, और न उनके अर्थाव ही से उनके मनोगत भावों का कुछ परिचय मिला। अगर उनके व्यवहारों में कोई नवीनता थी तो यह कि, वह पड़ले से भाव्याश स्नेहील, निर्द्वन्द्व और प्रफुल्ल वदन का गये थे। गोविन्दी का इतना आदर और मान उन्होंने कभी न किया था। उनके प्रयत्नशील

रहने पर भी गोविन्दी उनके मनोभावों को ताड़ रही थी और उसका चित्त प्रतिक्षण शङ्का से चञ्चल और क्षुब्ध रहता था। अब उसे इसमें शंका भी सन्देह नहीं था कि, सोमदत्त ने आग लगा दी है। गीली लकड़ी में पड़कर वह चिनगारी बुझ जायगी या जङ्गल की सूखी पत्तियाँ हाहाकार करके जल उठेंगी, यह कौन जान सकता है। लेकिन इस सप्ताह के गुजरते ही अग्नि का प्रकोप होने लगा। ज्ञानचन्द्र एक महाजन के सुनीम थे। अब महाजन ने कह दिया—मेरे यहाँ अब आपका काम नहीं। जाविका का दूसरा साधन यजमानी थी। यजमान भी एक-एक करके उन्हें जवाब देने लगे। यहाँ तक कि, उनके द्वार पर लोगों का घाना-जाना बन्द हो गया। आग सूखी पत्तियों में लगकर अब हरे वृक्ष के चारों ओर भँडराने लगी। पर, ज्ञानचन्द्र के मुख में गोविन्दी के प्रति एक भी कटु, अमृदु शब्द न था। वह इस सामाजिक दण्ड की शायद कुछ परवा न करते, यदि दुर्भाग्यवशा हमने उनकी जीविका के द्वार न बन्द कर दिए होते। गोविन्दी सब कुछ समझती थी, पर सद्बोध के मारे कुछ कह न सकती थी। उसी के कारण उसके प्राणप्रिय पति की यह दशा हो रही है, यह उसके लिए दुःख मरने की बात थी। पर, कैस प्राणों का उत्सर्ग करें। उस जापन-तोड़ से मुक्त हो। इस विपत्ति में स्वामी के प्रति उसके रोम-रोम से पुनः कामनाओं की सरिता भी बहती थी, पर मुँह से एक शब्द भी न निकलता था। मान्य की सपसे निष्ठुर लीला अब दिन हुई, जब गोविन्दी जो बिना कुछ बड़े पुनः सोमदत्त के घर जा पहुँची। जिसके लिए वह सारा यातनाएँ झेझनी पड़ीं उसी ने अन्त में बेवफाई की। ज्ञानचन्द्र ने सुना तो केवल मुसकुरा दिए, पर गोविन्दी इस कुटिल आयात का इतना मानसिक तत्पन न कर सकी। गोविन्दी के प्रति बसत मुख से अविष शब्द निकल ही जाए। ज्ञानचन्द्र ने कहा—उन व्यर्थ ही

कोसती हो। प्रिये, उसका कोई दोष नहीं। भगवान हमारी परीक्षा ले रहे हैं। इस वक्त धैर्य के सिवा हमें किसी से कोई आशा न रखनी चाहिए।

जिन भावों को गोविन्दी कई दिनों से अन्तस्तल में दगती चली आती थी, वे धैर्य का बाँध टूटने ही बड़े वेग से बाहर निकल पड़े। पति के सम्मुख अपराधियों की भाँति हाथ बाँधकर उसने कहा—स्वामी, मेरे ही कारण आपको यह सारे पापड बेलने पड़ रहे हैं। मैं ही प्रायः कुल की कलङ्किनी हूँ। क्यों न मुझे किसी ऐसी जगह भेज दीजिए जहाँ कोई मेरी सूरत न देखे। मैं आपसे सत्य कहती हूँ।

ज्ञानचन्द्र ने गोविन्दी को थोर कुछ न कहने दिया। उसे हृदा से छगा कर बोले—प्रिये ऐसी बातों से मुझे दुखी न करो। तुम आज भी धतनी ही पवित्र हो जितनी उस समय थीं। जब देवताओं के समक्ष मैंने आजीवन पद्मि व्रत लिया था तब मुझसे तुम्हारा परिचय न था। अतः तो मेरी देह और मेरी आत्मा का एक-एक परमाणु तुम्हारे प्रक्षय प्रेम से बालोचिन हो रहा है। उपद्रास और गिन्दा की तो बात ही क्या है, दुर्दैव का कठोरतम आघात भी मेरे व्रत को मद्ग नहीं कर सकता। अगर हूँगे तो साथ-साथ हूँगे, तरंगे तो साथ-साथ तरंगे। मेरे जीवन का मुख्य कर्तव्य तुम्हारे प्रति है। संसार इनके पीछे—मडुन पीछे है।

गोविन्दी को जान पड़ा, उसके सम्मुख कोई देव मूर्ति खड़ी है। जना में इतनी प्रज्ञा, इतना भक्ति उभे आज तक कभी न हुई थी। उसे सबका मस्तक ऊँचा हो गया और मुख पर स्वर्गीय आभा लज्जक पड़ी। उसने फिर कुछ कहने का साहस न किया।

(६)

सम्पन्नता अपमान और उद्विग्नता को तुच्छ समझती है। उसके अभाव में ये गज्राएँ प्राणान्तक हो जाती हैं। ज्ञानचन्द्र दिना के दिना पर

में पड़े रहते। घर से बाहर निकलने का उन्हें साहस न होता था। जब तक गोविन्दी के पास गहने थे तब तक तो भोजन की चिन्ता न थी। किन्तु, जब यह आधार भी न रह गया तो हालत और भी खराब हो गई। कभी-कभी निराहार रह जाना पड़ता। अपनी व्यथा किससे कहें, कौन मित्र था ? कौन अपना था ?

गोविन्दी पहले भी दृष्ट-पुष्ट न थी, पर अब तो अनाहार और अन्त-वर्दना के कारण उसकी देह और भी जीर्ण हो गई थी। पहले शिशु के लिए दूध मोल लिया करती थी। अब इसकी सामर्थ्य न थी। बालक दिन दिन दुर्बल होता जाता था। मालूम होता था उसे सूखे का रोग हो गया है। दिन के दिन बच्चा खुरीं खाट पर पड़ा माता को नैराश्य दृष्टि से देखा करता। कदाचित् उसकी बाल बुद्धि भी अवस्था को समझती थी। कभी किसी वस्तु के लिए हठ न करता। उसकी बालोचित सरलता, धन्वन्ता और फ्रीड़ाशीलता ने अब एक दीर्घ, आशाविहीन प्रतीक्षा का रूप धारण कर लिया था। माता-पिता उसकी दशा देखकर मन ही मन कुड़ कुड़ कर रह जाते थे।

सन्ध्या का समय था। गोविन्दी अन्धेरे घर में बालक के सिरहाने चिन्ता में मग्न बैठी थी। आकाश पर बादल छाए हुए थे और हवा के नीचे उसके अर्जुनग्न शरीर में शर के समान लगते थे। घाज दिन भर धूप ने कुञ्ज न खाया था। घर में कुञ्ज था ही नहीं। क्षुधाग्नि से बालक उल्टा रहा था, पर या तो वह रोना न चाहता था, या उसमें रोने की शक्ति ही न थी।

रतने में ज्ञानधन्व तेली के यहाँ से तेल लेकर आ पहुँचे। तेल लाना। दीपक के जीप प्रज्वलन में माता ने बालक का मुख देखा तब ही। बालक का मुख पीला पड़ गया था और पुच्छिया

गई थीं। उसने वयरा कर बालक को गोद में उठाया। देह ढण्डी थी। चिल्लाकर बोली—हा भगवन् ! मेरे बच्चे को क्या हो गया ! ज्ञानचन्द्र ने बालक के मुख की ओर देखकर एक ठण्डी माम ली और बोले—ईश्वर, क्या सारी दया-दृष्टि हमारे ही ऊपर करोगे ?

गोविन्दी—हाय, मेरा लाल सारे भूख के शिथिल हो गया है। कोई ऐसा नहीं जो इसे दो घूँट दूध पिला दे।

यह कहकर उसने बालक को पति की गोद में दे दिया और एक लुटिया लेकर कालिन्दी के घर दूध माँगने चली। जित्त कालिन्दी ने ध्यान व महीने से इस पर की ओर झँका तक न था उसी के द्वार पर दूध की मिश्रा माँगने जाते हुए उसे कितनी ग्लानि, कितना सद्बोध हो रहा था, वह भगवान् के सिवा और कौन जान सकता है। यह पूरी बालक के त्रिप पर एक दिन कालिन्दी प्राण देती थी, पर उसकी ओर से अब उसने अपना हृदय इतना कठोर कर लिया था कि, वर में कई गड़गड़ लगने पर भी कभी एक चिल्लू दूध न भेता था। उसी की दया मिश्रा माँगने आज, अँधेरी रात में, भीगती हुई, गोविन्दी दौड़ी जा रही है। नाता ! तेरे वान्मल्य को वन्य है।

कालिन्दी दीपक लिए दालान में खड़ी गाय दुदा रही थी। पड़क स्वामिनी बतने के लिए उस मौन से लडा करती थी। नेत्रिहा का पद उसे स्वीकार न था। अब नेत्रिहा का पद स्वीकार करके वह वर को स्वामिनी बनी हुई थी। गोविन्दी को देव कर पुन्य गार् निकर आते और विस्मय से बोली—क्या है रात, पानी हँदी में कैव चला आई ! गोविन्दी ने मकुवाने हुए बड़ा—ठाला बहुत गुप्रा है कालिन्दी। आज दिन भर कुठ नहीं मिश्रा। बोझना दूध देने आई हूँ। कालिन्दी नीतर जाकर दूध का जटहा लिए बाहर निकर आई और बोली—जितना

हो ले लो गोविन्दी । दूध की कौन कमी है । लाला तो भय चलता होगा । बहुत जी चाहता है कि, जाकर उसे देख आऊँ, लेकिन जाने का हुकुम नहीं है । पेट पालना है तो हुकुम मानना ही पड़ेगा । तुमने मतलाया ही नहीं, नहीं तो लाला के लिए दूध का तोडा थोड़ा ही है । मैं क्या चली आई कि, तुमने उसका मुँह देखने को भी तरसा डाला । मुझे कभी पूछता है ?

यह कहते हुए कालिन्दी ने दूध का मटका गोविन्दी के हाथ में रख दिया । गोविन्दी की आँखों से आँसू बहने लगे । कालिन्दी इतनी दया करेगी, इसकी उसे आशा नहीं थी । अब उसे ज्ञात हुआ कि, यह वही दयाशीला, सेवा परायणा रमणी है जो पढ़ले थी । लेशमात्र भी अन्तर न था । बोली—इतना दूध लेकर क्या करूँगी । बहन, इस लुटिया में डाल दो ।

कालिन्दी—दूध छोटे बड़े सब खाते हैं । ले जाओ, (धीरे से) यह मत समझो कि, मैं तुम्हारे घर से चली आई तो बिरानी हो गई । तुम्हारा जोक और स्नेह कभी न भूलूँगी । हाँ, निन्दा सुनने का साहस नह था । नगवान् की दया से अब यहा किसी बात की चिन्ता नहीं है । सुनसे बहने की देर है । हाँ, मैं आजगी नहीं । इससे लाचार हूँ । कल किसी बेला लाला को लेकर नदी किनारे आ जाना । देखने को बहुत प्र पादता है ।

गोविन्दी दूध की हाँटी लिए घर चली, गर्वपूर्ण आनन्द के नारे उसके पैर उड़े जाते थे । छोटी में पैर रखते ही बोली—जरा दिया दिया दना, यहाँ पुँउ लुन्कार नहीं देता । ऐसा न हो दूध गिर पड़े ।

ज्ञानपन्थ ने दीपक दिखा दिया । गोविन्दी ने हाटक को अपनी आँसु से छेदा कर लोहा ले दूध रिलाना चाहा पर एक घूँट से अधिक

दूध ऋण्ड में न गया। बालक ने द्विचक्री की ओर अपनी जोरन लीला समाप्त कर दी।

कल्प रोदन में घर गूँज उठा। मारी बत्ती के लोग चौंक पड़े। पर, जब मालूम हो गया कि, ज्ञानचन्द्र के घर में आयाज आ रही है तो कोई द्वार पर न आया। रातभर भग्न हृदय दम्पति रोते रहे। प्रातःकाळ ज्ञानचन्द्र ने राव उठा लिया और शमयान की ओर चले। नेकड़ों माद नियों ने उन्हें जाते देखा। पर, कोई समोप न आया!

(०)

कुल-नयाँदा सवार की सबसे उत्तम वस्तु है। उस पर प्राण तक न्योठावर कर दिए जाते हैं। ज्ञानचन्द्र के दाथ में वह वस्तु निकल गई किम पर उसे गौरव था। वह गर्व, वह भावन उठ, वह तेज जा उरगा ने उनके हृदय में कूट कूट कर भर दिया था, उनका कुल ग्रंथ ता पड़े ही मिट चुका था, रचा-बुचा पुत्र-शाड ने मिटा दिया। उसे विश्वास ही गया कि, उसके अविचार का ईश्वर ने यह दण्ड दिया है। दुःखसा, जीर्णता और मानभिक दुर्बलता ममा इस विश्वास की दूध करता थी। वह गोविन्दी की भव भी निर्दोष मनकता था। उसके प्रति एक ना रुद शब्द उसके सुँद में न निकलता था, न कोई कटु भाव उसके त्रिड में चगद पाता था। विप्रि की क्रूर क्रीडा ही उनका सर्वनाश कर रहा है। इसमें उसे खेरायात्र भी मन्देइ न ग।

भव यह घर उन्हें काटे जाता था। पर के प्राण में निकल गए। अब माता किमे गोद में लेकर चाँद मामा की पुजापगी, किम उरटा मरेगी, किमके डिग् प्रातःकाळ हंगा पकापगी। अब सब कुल गूथ ग, नाटन होता था उनके इदन निवाच छिप गए हैं। अपमान, कड, अनाहार, इन नारी विडम्बनाओं के शते हुए भा वाडक की वाड-

ज्ञान०—वाह, इससे सरल तो कोई काम ही नहीं है। कह दूँगे हम रुपये दे चुके। सारा गाँव वनकी तरफ़ हो जायगा। मैं तो अब गाँव भर का द्रोही हूँ न। आज खूब डटकर भोजन किया। अब मैं भी रईस हूँ, बिना हाथ-पैर हिलाए गुलडरें बढाता हूँ। सब कहता हूँ, तुम्हारी ओर से अब मैं निश्चिन्त हो गया। देस विदेस भी चला जाऊँ तो तुम अपना निवाह कर सकती हो।

गोविन्दी—कहीं जाने का काम नहीं है।

ज्ञान०—तो यहाँ जाता ही कौन है। किसे कुत्ते ने काटा है जो यह सेरा छोड़ कर मेहनत-मजूरी करने जाय। तुम सचमुच देगी हो गोविन्दी।

भोजन करके ज्ञानचन्द्र बाहर निकले। गोविन्दी भोजन करके कोठरी में आई तो ज्ञानचन्द्र न थे। समझी कहीं बाहर चले गए होंगे। आज पति की बातों से उसका धित्त कुछ प्रसन्न था। शायद अब वह नौकरी-चाकरी की गोज में कहीं जानेवाले हैं। यह आशा बँध रही थी। हाँ, उनका व्यंग्योतिया का भाव उसकी समझ में न आता था। ऐसी बातें वह कभी न करते थे। आज क्या सूझी।

उठ करडे सीने धे। जाड़ों के दिन धे। गोविन्दी धूम में बैठ कर सीने लगा। थोड़ी हा देर में शाम हो गई। अब भी तब ज्ञानचन्द्र नहीं आए। तेर पता का समय आया फिर भोजन की तैयारी करने लगी। न कि हा बोला सा दूध दे गई थी। गोविन्दी को तो भूल न था, अब वह एक ही घेरा खाता था। हाँ, ज्ञानचन्द्र के लिए रोटियाँ तैयार थीं। ताजा दूध है तो, दूध रोटी खा लेंगे।

ज्ञान चन्द्र कर निरली हा जी डि सोमदत्त ने आंगन में धाजर
जा—... १३३

गोविन्दी—कहीं गए हैं ।

सोम०—कपड़े पहन कर गए हैं ?

गोविन्दी—हां, काली मिर्चें पहने थे ।

सोम०—जूता भी पहने थे ?

गोविन्दी की छाती धड़-धड़ करने लगी । बोली—हां, जूता तो पहने थे ! क्यों पूछते हो ?

सोमदत्त ने जोर से हाथ मार कर कहा—हाथ जानू ! हाथ !

गोविन्दी बमरा कर बोली—स्वया हुआ वादा जी ? हाथ ! शताते क्यों नहीं ? हाथ !

सोम०—अभी याने से आ रहा हूँ । वहां उनकी लाश मिली है । रेत के नीचे दब गए ! हाथ ! जानू ! मुझ हत्यारे को क्यों न मौत आ गई ।

गोविन्दी के मुँह से फिर कोई शब्द न निकला । मन्तिम "हाथ" के साथ बहुत दिनों तक तड़पता हुआ प्राण-पक्षी उड़ गया ।

एक क्षण में गाँव की कितनी ही छियाँ जमा हो गईं । सब कहती थीं देवी थी ! सती थी !

प्रातः काठ दो आर्थियाँ गाँव से निकलीं । एक पर रेशमी चुँदरी का कुर्रवा था, दूसरी पर रेशमी याक का । गाँव के दिनों में से केवल सोमदत्त साथ था । शेष गाँव के नीचे जाति वाले आश्रमी थे । सोमदत्त ने दाइ-छिया का प्रणय किया था ! वह १६ १६ कर दोनों शायें लक्ष्मी जाती पीड़ता था, जोर जोर-जोर से चिन्ताता था—हाथ जानू ! हाथ जानू !

चोरी



य बचपन ! तेरी याद नहीं भूलती ! वह कच्चा, दूया घर, वह पयाल का बिछौना, वह नगे बदन, नंगे पाँव खेतों में घूमना, आम के पेड़ों पर चढ़ना— सारी बातें आँखों के सामने फिर रही हैं। घम-रीधे जूते पहन कर उस वक्त जितनी सुधी होती थी, अब 'पलैरस' के बूटों से भी नहीं होती। गरम पनुप रस में जो मजा था, वह अब गुलाब

के शरबत में भी नहीं, चबेने और कच्चे वेरों में जो रस था वह अब धरंगर और खीरमोहन में भी नहीं मिलता। मैं अपने चबेरे भाई हलधर के साथ दूसरे गाँव में एक मौलवी

साहब के यहाँ पढ़ने जाया करता था। मेरी उम्र ८ साल की थी, हलधर (यह अब स्वर्ग में निवास कर रहे हैं) मुझसे दो साल जेठे थे। हम दोनों प्रातःकाल बासी रोटियाँ खा, दोपहर के लिये मटर और जौ का चबेना लेकर चल देते थे। फिर तो सारा दिन अपना था। मौलवी साहब के यहाँ कोई हाजिरी का रजिस्टर तो था नहीं, और न गैरहाजिरी का जुर्माना ही देना पड़ता था। फिर हर किस बात का ! कभी तो थाने के कामने लड़े सिपाहियों की कड़ाबद देखते, कभी किसी भाडू या बंदर के नयानेवाले मसहरी के पीछे-पीछे घूमने में दिन काट देते, कभी रेलवे स्टेशन की ओर निकल जाते और गाड़ियों की बहार देखते। गाड़ियों के समय का जितना ज्ञान हमको था, उतना शावद टाइन-टैबिल को भी न था। रास्ते में शहर के एक-दो नहाजन ने एक बाग लगावना पुल किया था। वहाँ एक दुर्गा पुद रटा था। वहाँ भी हमारे लिये एक दिक्कत तनाशा

या । बूढ़ा माली हमें अपने झोपड़ी में बड़े प्रेम से बैठाता था । हम उससे झगड़ झगड़कर उसका काम करते । कहीं बालटी लिए पौधों को सींच रहे हैं, कहीं सुरपी से म्यारियाँ गोड रहे हैं, कहीं केंची से वेलों की पत्तियाँ छांट रहे हैं । उन कामों में कितना आनंद था ! माली बाल-प्रकृति का पंडित था । हमसे काम लेता, पर इस तरह, मानो हमारे ऊपर कोई एहसान कर रहा है । जितना काम वह दिन भर में करता, हम घंटे भर में निपट्रा देते थे । अब वह माली नहीं है, लेकिन बाग़ हरा-भरा है । उसके पास से होकर गुजरता हूँ, तो जी चाइता है, उन पेड़ों के गले मिलकर रोऊँ, और कहूँ—प्यारे, तुम मुझे भूल गए हो, लेकिन मैं तुम्हें नहीं भूला, मेरे हृदय में तुम्हारी याद अभी तक बरी है—उतनी ही बरी, जितने तुम्हारे पत्ते । दिस्स्वार्थ प्रेम के तुम जीते जागने स्वरूप हो ।

कभी-कभी हम वपतों गैरदाजिर रहते, पर मौलवी साइब से ऐसा बड़ाना कर देते कि उनकी चढ़ी हुई त्योरियाँ उतर जातीं । उतनी कल्पना शक्ति आज होती, तो ऐसा उपन्यास लिख मारता कि लोग चकित रह जाते । अब तो यह हाल है कि बहुत सिर छपाने के बाद कोई कहानी सूझती है । पैर, हमारे मौलवी साइब दली य । मौलवीगीरी केवल सौक से करते थे । हम दोनों भाई अपने भाग के ली-कुम्हारों से उनकी सूत्र बढ़ाई करने थे । या कहिए कि इन मौलवी इतने के सफरी पज़ेड थे । इनारे व्योग से चर मौलवी साइब को कुछ न मिल जाता, तो हम झूठे न समाते । चिस दिन कोई अच्छा बड़ाना न मन्बता, मौलवी साइब के लिये कोई न कोई सौगात ले जाते । कना सेर आउवेर फलिया तोड लीं, तो कनी दुष-गाच रखें, कभी नो या गेहूँ की इरी-इरी बालें ले लीं । इन सौगातों को देखने ही मौलवी साइब

का क्रोध शांत हो जाता। जब इन चीजों की फ़सल न होती, तो हम सजा में बचने का कोई और ही उपाय सोचते। मौलवी साहब को चिड़ियों का शौक था। मक़तब में श्यामा, बुलबुल, दहियल और चंडूलों के पिंजड़े लटकते रहते थे। हमें सबक़ याद हो, या न हो, पर चिड़ियों को याद हो जाते थे। हमारे साथ ही वे भी पढ़ा करती थीं। इन चिड़ियों के लिये ज़ेयन पोसने में हम लोग ख़ूब उत्साह दिखाते थे। मौलवी साहब सब लडकों को पतिंगे पकड़ लाने की ताकीद करते रहते थे। इन चिड़ियों को पतिंगों से विशेष रुचि थी। कभी-कभी हमारी बला पतिंगों ही में सिर चली जाती थी। उनका बलिदान करके हम मौलवी साहब के रोड़ रूप का प्रसन्न कर लिया करते थे।

एक दिन सवेरे हम दोनों भाई तालाब में मुँह धोने गए, तो हलधर ने कोई सफ़ेद सी चीज मुट्ठी में लेकर दिखाई। मैंने लपक कर मुट्ठी खोली, तो उसमें एक रुपया था। विस्मित होकर पूछा—यह रुपया तुम्हें कहाँ मिला ?

हलधर—भ्रम्राँ ने ताक पर रखा था, चारपाई खड़ी करके निकाल लाया।

घर में कोई सडूक या भाळमारी तो थी नहीं, हाए-पैसे एक ऊँचे ताक पर रख दिए जाते थे। एक दिन पहले चचाजी ने सन बेचा था। उसी के रख ज़रिदार को देने के लिये रखे हुए थे। हलधर को न-जाने क्योंकर पता लग गया। जब घर में सब लोग फ़ात धधे में लग गए, तो आपने चारपाई खड़ी की, और उस पर चटकर एक रुपया निज़ाल लिया।

उस एक ताक हमने कभी रुपया जुटा तक न था। वह रुपया देव पर आगद और नय की आ तरफ़ों दिऊ में उठी, ये ज़नी ताक याद है। हमारे जिने रुपया एक अज्ञय वस्तु थी। मौलवी साहब को हमारे ब

से सिर्फ़ ॥॥) मिला करते थे। महीने के अन्त में चचाजी खुद जाकर वैसे दे आते थे। हमारा इतना भी विश्वास न था। वही हम आज एक रूपए के छत्र-पति राजा थे। भला कौन हमारे गर्व का अनुमान कर सकता है ! लेकिन मार का भय आनंद में चित्र डाल रहा था। रूपए अनगिनती तो थे नहीं। चोरी का खुल जाना मानी हुई बात थी। चचाजी के क्रोध का भी मुझे तो नहीं, इलखर को प्रत्यक्ष अनुभव हो चुका था। यों उनसे ज्यादा सीधा-सादा भादमी दुनिया में न था। चची ने उनकी रक्षा का भार सिर पर न लिया होता, तो कोई बनिया उन्हें बाजार में बेच सकता था। पर जब क्रोध आ जाता, तो फिर उन्हें कुछ न सूझता। और तो और, चची भी उनके क्रोध का सामना करते उठती थीं। हम दोनों ने कई मिनट तक इन्हीं बातों पर विचार किया, और आखिर यही निश्चय हुआ कि आई हुई लक्ष्मी को न जाने देना चाहिए। एक तो हमारे ऊपर संदेह होगा ही नहीं, और अगर हुआ भी, तो हम साफ़ इनकार कर जायेंगे—कहेंगे, हम रुपया लेकर गया करते, हमारी नंगा-झोली ले लीजिए। शायद और शांत चित्त से विचार करते, तो यह निश्चय पलट जाता, और वह बीभत्स लीला न होती, जो आगे चल कर हुई; पर उस समय हममें शांति से विचार करने की क्षमता ही न थी।

मुँ इ हाथ धोकर हम दोनों घर आए, और उरते उरते घर दर-दरम चला। अगर कहीं इस वक्त थलाशी की नौबत आई, तो फिर भगवान् ही मालिक है, लेकिन सब लोग अपना-अपना काम कर रहे थे। कोई हमसे न बोला। हमने नारता जी न किया, चचेना जी न किया, किताब बगल में दबाई और मद्रसे का रास्ता ठिया।

बारसात के दिन थे। आकाश पर बादल टाप टुप थे। हम होन

सुश-सुश मकतब चले जा रहे थे। आज काउंसिल की मिनिस्ट्री पाकर भी शायद वतना आनंद न हो। हज़ारों मंसूबे बाँधते थे, हज़ारों हवाई किले बनाते थे। यह अबसर बड़े भाग्य से मिला था। जीवन में फिर शायद ही यह अबसर मिले। इसलिये रुपये को इस तरह खर्च करना चाहते थे कि ज्यादा से ज्यादा दिनों तक चल सके। यद्यपि उन दिनों १) सेर बहुत अच्छी मिठाई मिलती थी, और शायद आध सेर मिठाई में हम दोनों अफर जाते, लेकिन यह खयाल हुआ कि मिठाई खाएँगे, तो रुपया आज ही गायब हो जायगा। कोई सस्ती चीज़ खानी चाहिए, जिसमें मजा भी आए, पेट भी भरे, और पैसे भी कम खर्च हों। आखिर अमरुदों पर हमारी नजर गई। हम दोनों राज़ी हो गए। दो पैसे के अमरुद लिए। सस्ता समय था, बड़े-बड़े वारह अमरुद मिले। हम दोनों के कुत्तों के दामन भर गए। जब हलधर ने खटकन के हाथ में रुपया रक्खा, तो उसने सदेह से देख कर पूछा—रुपया कहाँ पाया, माजा ? पुरा तो नहीं लाए ?

जवाब हमारे पास तैयार था। ज्यादा नहीं, तो दो-तीन कितायें तो पट ही चुके थे। विद्या का कुछ कुछ असर हो चला था। मैंने भूट से कहा—भौकवी साहब की फ़ीस देनी है। घर में पैसे न थे, तो चचाजी ने रुपया दे दिया।

इस जवाब ने खटकन का संदेह दूर कर दिया। हम दोनों ने एक पुलिया पर बैठकर सब अमरुद खाए। मगर अब साठे पद्रह आने पैसे कहाँ ले जावें ? एक रुपया छिपा लेना तो इतना मुश्किल काम न था। पैसे का ढेर कहाँ छिपता। न कमर में इतनी जगह थी, और न जेब में रखना मुझारथ। उन्हें अपने पास रखना अपनी चोरी का टिडोरा पीटना था। बहुत सोचने के बाद यह विरहय किया कि ५) तो भौकवी साहब

को दे दिए जायँ शेष ॥) की मिठाई उडे । यह फैसला करके हम लोग मकतब पहुँचे । आज कई दिन के बाद गए थे । मौलवी साहब ने थिगउकर पूछा—इतने दिन कहीं रहे ?

मैंने कहा—मौलवी साहब घर में गमी हो गई थी ।

यह कहते ही कहते ॥) उनके सामने रख दिए । फिर क्या पूछना था ! जैसे देखते ही मौलवी साहब की बाँठें खिल गईं । महीना गुप्त होने में अभी कई दिन बाकी थे । साधारणतः महीना चढ जाने और बार-बार तफ़ाज़े करने पर कहीं जैसे मिलते थे । अबकी इतनी जल्द पेश पाकर उनका खुश होना कोई अस्वाभाविक बात न थी । हमने अगल लड़कों की ओर सगर्व नेत्रों से देखा, मानो कह रहे हों—एक तुम हो कि माँगने पर भी जैसे नहीं देते, एक हम हैं कि पेशगी देते हैं ।

हम अभी सबक पढ ही रहे थे कि मालूम हुआ, आज तालाब का मेला है, दोपहर से जुटी हो जायगी । मौलवी साहब मेले में कुछबुल लड़ाने जायँगे । यह खबर सुनते ही हमारी खुशी का ठिकाना न रहा, ॥) तीर्थ में जमा हो कर चुके थे, ॥) मैं मेला देखने की ठगरी । पूरा ५.११ रहेगी । मजे से रेडियाँ खाएँगे, गोल-गण्डे उडाएँगे, झूठे पर चढ़ेंगे, और शाम को घर पहुँचेंगे । लेकिन मौलवी साहब ने एक कड़ी शर्त पढ लगा दी थी कि सब लड़के जुटी के पहले अपना-अपना सबक गुमा दें । जो सबक न सुना सकेगा उसे जुटी न मिलेगी । नतीजा यह हुआ कि मुझे तो जुटी मिल गई, पर इलजल कैद कर दिए गए । और कई लड़कों ने भी सबक सुना दिए थे । वे सभी मेला देखने चढ पडे । मैं भी उधर साथ हो लिया । जैसे मेरे ही पास थे, इसलिये मैंने इलजल को नाप लेना का इतवार न किया । तै हो गया था कि वह जुटी पाने ही नेने प्रा जायँ, और दोनों साथ-साथ मेला देखें । मैंने खबर दिया था कि न

नक वह न आएँगे, एक पैसा भी न खर्च करूँगा। लेकिन क्या मालूम था कि दुर्भाग्य कुछ और ही लीला रच रहा है। मुझे मेला पहुँचे एक घंटे से ज्यादा गुजर गया, पर हलधर का कहीं पता नहीं। क्या अभी तक मौलवी साहब ने छुट्टी नहीं दी, या रास्ता भूल गए? आंखें फाड़-फाड़कर सड़क की ओर देखता था। अकेले मेला देखने में जी भी न लगता था। यह संशय भी हो रहा था कि कहीं चोरी सुल तो नहीं गई, ओर घवाजी हलधर को पकड़कर घर तो नहीं ले गए। आखिर जब राम हो गई, तो मैंने कुछ रेडियाँ खाईं, और हलधर के द्विस्केके पैसे जेब में रख कर धीरे-धीरे घर चला। रास्ते में खयाल आया, मकतब होता चले। शायद हलधर अभी वहीं हों। मगर वहाँ सञ्जाटा था। हाँ एक लड़का खेतता हुआ मिला। उसने मुझे देखते ही ज़ोर से कूहकहा मारा, और बोला—बचा घर जाओ तो, कैसी मार पड़ती है। तुम्हारे बचा आए थे। हलधर को मारते मारते ले गए हैं। भजी ऐसा तानकर पूँसा मारा कि मियाँ हलधर मुह के बल गिर पड़े। यहाँ से घसीटते ल गए हैं। तुमने मौलवी साहब की तनख्वाह दे दी थी, वह भी ले ली। अभी से काई बहाना सोच लो, नहीं तो बेभाव की पड़ेंगी।

मेरी सिटी पिटी भूल गई, पदन का लहू सूख गया। वड़ी हुआ, जिसका मुझे शक हो रहा था। पैर मन मनभर के हो गए। घर की ओर एक एक पदम चलना मुशकिल हो गया। देवी-देवतों के जितने नाम याद थे, सभी की मानता मानी—किसी को लड्डू, किसी को पेड़े, किसी को अतासे। गाँव के पास पहुँचा, तो गाँव के ढीह का सुमिरन दिया क्योंकि अपने हलके में ढीह ही की इच्छा सर्वप्रधान होती है।

यह सब हुआ किया, लेकिन ज्यों ज्यों घर निकट आता, दिङ की चकन चलता जाता था। घराएँ उमड़ी आती थीं। मालूम होता था,

आसमान फट कर गिरा ही चाहता है। देखता था, लोग अपने-अपने काम छोड़-छोड़ भागे जा रहे हैं, गोरू भी पूँछ उठाए घर की ओर घुलते-कूदते चले जाते थे। चिट्ठियाँ अपने घोंसलों की ओर उड़ी चली आती थीं। लेकिन मैं उसी मंद गति से चला जाता था, मानो पैरों में शक्ति ही नहीं। जी चाहता था, ज़ोर का उखार चढ़ जाये, या कहीं चोट लग जाय। लेकिन कहने से धोबी गधे पर नहीं चढ़ता। तुझने से मौत भी नहीं आती, बीमारी का तो कहना ही क्या। कुठ न हुआ, और धीरे-धीरे चलने पर भी घर सामने आ ही गया। अब क्या हो! हमारे द्वार पर हूमली का एक घना वृक्ष था। मैं उसी की छाड़ में ठिग गया कि ज़रा और अँधेरा हो जाय, तो चुपके से घुस जाऊँ, और अम्माँ के कमरे में चारपाई के नीचे जा बैहूँ। जब सब लोग सो जायेंगे, तो अम्माँ से सारी कथा कह सुनाऊँगा। अम्माँ कभी नहीं मारती। जरा उनके सामने झूठ मूठ रोऊँगा, तो वह और भी पिघल जायँगी। रात कट जाने पर फिर कौन पूछता है। सुबह तब सबका गुस्सा ठंडा हो जायगा। अगर य मंसूरे पूरे हो जाते, तो इसमें संदेह नहीं, मैं श्रावण बच जाता। लेकिन वहाँ तो विधावा को कुठ और दी मरूर था। मुझे एक लडके ने देव लिया, और मेरे नाम की रट लगाते हुए सीधे मरूर में जागा। अब मेरे लिये कोई आशा न रही। लाचार घर में शान्ति न हुआ, तो सबसे मुँह से एक चीख निकल गई, जैसे मार खाया हुआ कुत्ता किसी को अपनी ओर आते देख कर भय से चिल्लाने लगता है। बरोटे में पिताजी बैठे थे। पिताजी का स्वास्थ्य इन दिनों कुठ न हुआ हो गया था। बुड़ी डेहर घर आए हुए थे। यह तो नहीं कह सकता कि उन्हें शिकायत क्या थी, पर वह मुँग की शाल खाते थे, और अम्माँ सनय शीशे के ग्लास में एक बोतल में से कुठ उँडे-उँडे कर पीते थे।

शायद यह किसी तजुखेदार इन्जीन की बताई हुई दवा थी। दवाएँ सब बसानेवाली और कड़वी होती हैं। यह दवा भी तुरी ही थी, पर पिताजी न-जाने क्यों इस दवा को खूब मजा ले-लेकर पीते थे। हम जो दवा पीते हैं, तो भाँखें बंद करके एक ही घूँट में गटक जाते हैं। पर शायद इस दवा का असर धीरे धीरे पीने में ही होता हो। पिताजी के पास गाँव के दो-तीन, और कभी-कभी चार-पाँच और रोगी भी जमा हो जाते, और घंटों दवा पीते रहते थे, मुश्किल से खाना खाने उठते थे। इस समय भी यह दवा पी रहे थे। रोगियों की मडली जमा थी। मुझे देखते ही पिताजी ने लाल भाँखें करके पूछा—कहाँ थे अब तक ?

मैंने वही ज़बान से कहा—कहीं तो नहीं।

‘अब चोरी की आदत सीख रहा है। बोल, तूने हथिया चुराया कि नहीं ?’

मेरी ज़बान बन्द हो गई। सामने नंगी तलवार नाच रही थी। शब्द भी निकलते हुए डरता था।

पिताजी ने जोर से डाँटकर पूछा—बोलता क्यों नहीं, तूने हथिया चुराया कि नहीं ?

मैंने जान पर खेलकर कहा—मैंने कहाँ.....

मुँह से पूरी बात भी न निकलने पाई थी कि पिताजी विकराल रूप धारण किए, दाँत पीसते, ऋश्टकर उठे, और हाथ उठाए मेरी ओर चले। मैं जोर से पिछाकर रोने लगा—ऐसा चिढ़ाया कि पिताजी भी सदम गए। उनका हाथ उठा ही रह गया। शायद समझे कि जब अपनी से इतना यह टाल है, तब तनाचा पड़ जाने पर कहीं इसकी जान ही बचि उ आय। मेने जो देखा कि मेरी हिकमत काम कर गई तो और भी लाल भाँखें कर रोने लगा। इतने में मडली के दो-तीन भाइयों ने

पिताजी को पकड़ लिया, और मेरी ओर इशारा किया, भाग जा । उसके बहुधा ऐसे मौके पर और भी मचल जाते हैं, और व्यर्थ मार खा जाते हैं । मैंने बुद्धिमानी से काम लिया ।

लेकिन अदर का दृश्य इससे कहीं भयंकर था । मेरा तो पून सदा हो गया । हलधर के दोनों हाथ एक सभे से बँधे थे, पारी देह धूम्र-धूम्रित हो रही थी, और वह अभी तक पिसक रहे थे । शायद वह आंगन-भर में लोटे थे । ऐसा मालूम हुआ कि सारा आंगन उनके अंगुष्ठों से भीग गया है । चची हलधर को डाँट रही थी, और अम्मा बैठी जमाला पीम रही थी । सबसे पहले मुझ पर चची की निगाह पड़ । बोली—लो, वह भी भा गया । क्यों रे रूपया तूने चुराया था कि रसने ?

मैंने निरशंक होकर कहा—हलधर ने ।

अम्मा बोली—अगर उसी ने चुराया था तो तूने घर आकर किसी से कहा क्यों नहीं ?

अब झूठ बोलने का अर्थ मुझको था । मैं तो समझता हूँ कि जब गडगी को जान का खतरा हो, तो झूठ बोलना शक्य है । हलधर मार खाने के आदी थे । दो चार घूँसे और पड़ने से उनका कुछ न भिन्न सकता था । मैंने जार कभी न खाई थी । मेरा तो दो ही चार घूँसा मैं काम न मान हो जाता । फिर हलधर ने भी तो अपने को अज्ञान के विषय में बँसाने की चेष्टा नहीं की, नहीं तो चची मुझसे यह क्यों पड़ती ? क्या तूने चुराया, या हलधर ने ? किसी ना विश्वास मेरा झूठ बोला अब समझ-सुत्य नहीं, तो अन्य कहा था । मैंने पूछी ही कहा—हलधर जितने मेरे किसी से खत था, तो मार ही उल्लूका ।

अम्मा—देना, वही बात विद्वानों ने । ने तो बड़ना ही ही कि बड़ा

वद वर की औरतें देखी हैं, मुदा हजूर के तलुग्यों की बराबरी भी नहीं कर सकतीं ।

देवी—चल भूटे ! मैं ऐसी कौन बड़ी खूबसूरत हूँ ।

मुन्नु—अब सरकार से क्या कहूँ । बड़ी बड़ी खत्रानियों की देवता हैं, मगर गोरेपन के लिये और कोई बात नहीं । उनमें यह कतक कहाँ सरकार !

दजी—एक रूप में तुम्हारा काम चल जायगा ?

मुन्नु—जला सरकार दो रूप तो दे दें ।

देवी—अच्छा, यह लो और जाओ ।

मुन्नु—जाता हूँ सरकार । आप नाराज न हों, तो एक बात पूछूँ ?

देवी—क्या पूछते हो, पूछो, मगर जल्दी मुझे बूढ़ा जगाना है ।

मुन्नु—तो सरकार जायँ, फिर कभी कहूँगा ।

देवी—नहीं-नहीं, कहो, क्या बात है ? अभी कुछ ऐसा जल्दी नहीं है ।

मुन्नु—दाकमण्डी में सरकार के कोई रहते हैं क्या ?

देवी—नहीं, वहाँ तो कोई गातेदार नहीं है ।

मुन्नु—तो कोई दोस्त ढोंगे । सरकार को अक्तर एक कोठे पर नै पतरन देसता हूँ ।

देवी—दाकमण्डी तो रजियों का रहता है ।

मुन्नु—हाँ सरकार, रजियों बहुत हैं वहाँ । लेकिन सरकार तो नीचे-भाद आदमो मादूम होते हैं । वहाँ रात को देर से तो नहीं आने ?

देवी—नहीं, मगर जने से पहले ही आ जाने हैं, और फिर जदी नहीं आते । हाँ, रजियों-जनों कादमोरा अलबखाला - ते हैं ।

मुन्नु—एक एक, दही बात है हजूर । नीचा लिये, व देर से न

समझा दीजिएगा सरकार कि रात को उधर न जाया करें। आदमी का दिल कितना ही साफ हो, लेकिन देखनेवाले तो सक करने लगते हैं।

इतने ही में बाबू श्यामकिशोर आ गए। मुन्नु ने उन्हें सलाम किया, बाबूटी वठाई और चलता हुआ।

श्यामकिशोर ने पूछा—मुन्नु क्या कइ रहा था ?

देवी—कुछ नहीं, अपने दुखड़े रो रहा था। खाने को मांगता था, जो रूप दे दिए हैं। बातचीत बड़े ढंग से करता है।

श्याम—तुम्हें तो बातें करने का मरज है। और कोई नहीं, मेस्ता ही सही। इस भुतने से न-जाने तुम कैसे बातें करती हो !

देवी—मुझे उसकी सूरत लेकर क्या करना है। गरीब आदमी है। अपना दुख सुनाने लगता है, तो कैसे न सुनूँ।

बाबू साहब ने वेले का गजरा लूमाल से निकालकर देवी के गले में जाल दिया। किंतु देवी के मुख पर प्रसन्नता का कोई चिह्न न दिखाई दिया। तिरछी निगाहों से देखकर धोली—आप आजकल दालमेंढी भी सैर बहुत किया करते हैं ?

श्याम—कौन ? मैं ?

देवी—जी हाँ, तुम। मुझसे तो लाइसेंसी का बहाना करके जाते हो, और वहाँ उलसे होते हैं।

श्याम—दिलकुल कूड, सोलहों आने कूड। तुनसे कौन कहता था।

ही मुन्नु !

देवी—मुन्नु ने मुझसे कुछ नहीं कहा, पर मुझे तुम्हारी टोड़ निकलती रहती है।

श्याम—तुम नेरी टोड़ मत किया करो। राक करने से आदमी शाका हो जाता है, और तब बड़े बड़े अनर्थ हो जाते हैं। जहाँ मैं दाऊतदा

यों जाने लगा ? तुमसे बढकर दालमंडी में और कौन है ? मैं तो तुम्हारी हम मदभरी आँखों का आशिक हूँ । अगर अप्सरा भी सामने आ जाय, तो आँख बठाकर न देखूँ । आज शारदा कहाँ है ?

देवी—नीचे खेलने चली गई है ।

श्याम—नीचे मत जाने दिया करो । हक्के, मोटरें, बगियौ दौड़ती रहती हैं । न-जाने क्य क्या हो जाय । आज ही भरदूलीवाज़ार में एक चारदात हो गई । तीन लडके एक साथ दब गए ।

देवी—तीन लडके ! बडा गजब हो गया । किसकी मोटर थी ?

श्याम—हमका अभी तक पता नहीं चला । ईश्वर जानता है, मुन्हें यह गजरा बहुत खिल रहा है ।

देवी—(मुनकराकर) चलो बातें न बनाओ ।

(२)

तीसरे दिन मुन्नु ने देवी से कहा—सरकार, एक जगह सगाई ठीक हो रही है, देखिए कौल से फिर न जाहपगा । मुझे आपका दगा भरोसा है ।

देवी—देख ली औरत ? कैसी है ?

मुन्नु—सरकार, जैसी तकदीर में है, वैसी है । घर की रोटिया तो मिलेंगी, नहीं तो अपने हाथों ठोकना पड़ता था । है क्या कि निवाज की सीधी है । हमारे आत की औरतें पड़ी चंचल होती हैं हज़ूर । तैन्डे रति एक भी पाक न मिलेगी ।

देवी—मेदतर लोग अपनी औरतों को कुछ कहने नहीं !

मुन्नु—क्या रहे हज़ूर । उरते हैं कि वहीं अपने आवना से चुनकी कर दस ही नोकरी-वाकरा न चुन दे । मेहरारानियों पर बापु स हरो को बहुत निगाह रहती है सरकार !

देवी—(हँसकर) चल भूठे । बाजू साहबों की ओरतें त्या मोत रानियों से भी गई-गुजरी होती हैं ।

मुन्नु—अन सरकार कुठ न कइलावें । डूबर को जोड कर श्रीर तो कोई ऐसी बजुआइन नहीं देखता, जिसका कोई बजान करे । बहुत ही छोटा आदमी हूँ सरकार, पर इन बजुआइनों की तरह मेरी ओरत होती, तो उससे बोलने को जी न चाहता । डूबर के चेदरे मुदरे का कोई ओरत मैने तो नहीं देखी ।

देवी—चल भूठे, इतनी गुसामद करना किससे सीखा ।

मुन्नु—गुसामद नहीं करता सरकार, सचो बान कहता हूँ । डूबर ७६ दिन पिड़की के सामने खडी थीं । राजा मियाँ की निगाह प्राण पर पड गई । तूते की बडी दुकान हे उनकी । अरकाद ने जेवा धन दिया हे, वैसा ही दिख भी । आपको देखते ही आँखें नीचे कर लीं । बान माता बातों में डूबर की सन्दक सूरत को सराने लगे । मैने कहा, जेवा प्राप्त हे, वैसा ही सरकार को अकलाद ने दिख भी दिया है ।

देवी—अच्छा वह हाँवा सा सँजले रंग का जवान ।

मुन्नु—हाँ डूबर, वही । मुझसे कहने लगे कि किसी तराइ ७६ साल फिर उन्हें देव पाता । लेकिन मैने डाँटकर कहा, समरदार तियाँ, जो मुझसे ऐसी मातें लीं । वहाँ दुग्गारी दाक न गयेगी ।

देवी—तुमने बहुत अच्छा किया । निगाडे का प्राणें कूट जाय, अर डूबर से जाता है, पिड़की की ओर उनको निगाह रहती है । ६६ दिन, डूबर भूडकर जो न ताके ।

देवी—ये रोटियाँ लेते जाओ। आज बूल्हे से बच जाओगे।

मुन्नु—अब्लाह हज़ूर को सळामत रखे। मेरा तो यही जी चाहता है कि इसी दरवाजे पर पड़ा रहूँ और एक टुकड़ा खा लिया करूँ। सब कहता हूँ, हज़ूर को देखकर भूख-प्यास जाती रहती है।

मुन्नु वा ही रहा था कि बाबू श्यामकिशोर ऊपर घा पहुँचे। मुन्नु की पिछली बात उनके कानों में पड गई थी। मुन्नु ज्यों ही नीचे गया, बाबू माहव देवी से बोले—मैंने तुमसे कह दिया था कि मुन्नु को मुँह न लगाओ, पर तुमने मेरी बात न मानी। छोटे आदमी एक घर की बात दूसरे घर पहुँचा देते हैं, इन्हें कभी मुँह न लगाना चाहिए। भूख-प्यास पंद होने की क्या बात थी ?

देवी—क्या जानें, भूख-प्यास कैसी ? ऐसी तो कोई बात न थी।

श्याम—थी क्यों नहीं, मैंने साफ़ सुना।

देवी—मुझे तो खयाल नहीं आता। होगी कोई बात। मैं कौन इसकी सब बातें बैठी सुना करती हूँ।

श्याम—तो क्या वह दीवार से बातें करता है ? देखो, नीचे कोई आदमी इस खिडकी की तरफ ताकता चला जाता है। इसी मइस्ले का एक मुसळमान लौंडा है। जूने की दूकान करता है। तुम क्या इस खिडकी पर खड़ी रहा करती हो ?

देवी—चिक तो पड़ी हुई है।

श्याम—चिक के पास खडे होने से बाहर का आदमी तुम्हें साफ़ देख सकता है।

देवी—पह मुझे न मालूम था। अब कनी खिडकी खोलूंगी ही नहीं।

श्याम—हाँ, क्या फायदा ? मुन्नु की भद्र मत जाने दिया करो।

देवी—मुसलमाना कौन साफ़ करेगा ?

श्याम—तैर आवे, मगर उससे तुम्हें बातें न करनी चाहिए। आज एक नया पिप्टर आया है। चलो, देख आवें। सुना है इसके पेंटर बहुत अच्छे हैं।

इतने में शारदा नीचे से मिठाई का एक दोना किए दीवती रू आईं। देवी ने पूछा—अरी, यह मिठाई किसने दी ?

शारदा—राजा-भैया ने तो दी है। कहते थे तुमको अच्छे-अच्छे खिलाईने ला दूगा।

श्याम—राजा-भैया कौन हैं ?

शारदा—वही तो है, जो अभी इधर से गए हैं।

श्याम—वही तो नहीं, जो लंभा-सा सचिले रंग का आदमी है।

शारदा—हाँ-हाँ, वही-वही। मैं अब उनके घर रोज जाऊँगी।

देवी—क्या तू उसके घर गई थी ?

शारदा—वही तो गोद में उठा कर ले गए।

श्याम—तू नीचे खेलने मत जाया कर। किसी दिन मोटर के नीचे दब जायगी। देखती नहीं, कितनी मोटरें आती रहती हैं।

शारदा—राजा भैया कहते थे, तुम्हें मोटर पर इवा खिलाने ले चलगा।

श्याम—तुम बैठी बैठी किया क्या करती हो, जो तुमने एक लड़की की निगरानी भी नहीं हो सकती।

देवी—इतनी बड़ी लड़की को संदूक में बंद करके नहीं रखा जा सकता।

श्याम—मुन्नु तो इई है ।

देवी—(ओठ चबाकर) मुन्नु क्या मेरा कोई सगा है, जिससे वैठी बातें किया करती हूँ । गरीब आदमी है, अपना दुःख रोता है, तो क्या कहूँ । मुझसे तो दुःखकारते नहीं बनता ।

श्याम—वैर, खाना बना लो, नौ बजे तमाशा शुरू हो जायगा । मात बज गए हैं ।

देवी—तुम आओ, देख आओ, मैं न जाऊँगी ।

श्याम—तुम्हीं तो महीनों से तमाशे की रट लगाए हुए थीं । अब क्या हो गया । क्या तुमने कृतम खा ली है कि यह जो बात कह, वह कभी न मानूँगी ।

देवी—जाने क्यों तुम्हारा ऐसा खयाल है । मैं तो तुम्हारी रूखा पाकर ही कोई काम करती हूँ । मेरे जाने से तुम और ऐसे नर्ब हो जायेंगे, और रुपए कम पड़ जायेंगे, तो तुम मेरी जान खाने लगोगे, यही सोचकर मैंने कहा था । अब तुम कहते हो, तो चली चहुँगी । तमाशा दगना कितने सुरा लगता है ।

(३)

नौ बजे श्यामकिशोर एक तंगे पर बैठकर देवी और ता रूखा के साथ पिप्लर देखने चले । सड़क पर धोती ही डूर गए थे कि रोड से एक और तामा आ पहुँचा । उस पर रजा देठा हुआ था, जोर बलके ब ड म— हाँ बलके बमजर्म पैजा था मुत्त नोहनर, जो बहू साइब के दर को मलाई करता था । देवी ने वह दानो को देखते ही तिर मुँहा टिरी । बम आइएय हुआ तिरजा और दुःख से दगना गया निकला है कि रजा बर ताने पर पिप्लर लैर करावे के मता है । ता रूखा रजा को देखते ता

बोळ उठी—बाबूजी देखो, वठ राजा-भैया मा रठे हैं। (ताली बजाइर)
राजा-भैया, इधर देखो, हम लोग तमाशा देखने जा रहे हैं।

रजा ने मुसक़िरा दिया, मगर बाबू सादब मारे क्रोध के तितलिया उठे। उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि ये दुष्ट केवल मेरा पीछा करने के लिये आ रहे हैं। इन दोनों में जरूर साँठ गाठ है। नहीं तो रजा मुन्नु को साथ क्यों लेता? उनसे पीछा छुड़ाने के लिये उन्होंने ताँगोवाले से कहा—शौर तेज ले चलो, देर हो रही है। ताँगो तेज हो गया। रजा ने भी अपना ताँगो तेज किया। बाबू सादब ने जब ताँगो को धीमा करने को कहा, तो रजा का ताँगो भी धीमा हो गया। आखिर बाबू सादब ने कुँकड़ाकर कहा—तुम ताँगो को छारनी की ओर ले चलो, हम थिप्टर देखने न जायेंगे। ताँगोवाले ने उनकी ओर कुतूहल से देखा, और ताँगो फेर दिया। रजा का ताँगो भी फिर गया। बाबू सादब का इतना क्रोध था रहा था कि रजा को ललछाहूँ, पर डरते थे कि कहीं कतमा हो गया, तो बहुत से आदमी जमा हो जायेंगे और व्यर्थ ही केप होगी। उहूँ का डूँट पीकर रह गए। अपने ही ऊपर कुँकड़ाने लगे कि नाइकू भाया। क्या जानता था कि ये दोनों शैतान फिर पर सवार हो जायेंगे। मुन्नु को तो कुछ ही निकाल देंगा। शारे रजा का ताँगो कुछ दूर चपकर दूसरी तरफ़ मुड़ गया, और बाबू सादब का क्रोध कुछ शीत हुआ, किंतु अब थिप्टर जाने का समय न था। छारनी स पर लौट आए।

देवा ने कोठे पर घाकर कहा—मुन्नु में ताँगोवाले को दो काप दम उठे। खानक़ियोर ने उसकी ओर रक्त शोषक दृष्टि से देखकर कहा—शौर मुन्नु से बातें करो और थिप्टकी पर लट्टी डो-डोहर रजा को उरि दिलाओ। तुम न-जाने क्या करने पर तुली हुई हो!

देवी—ऐसी बातें मुँह से निकालते तुम्हें शर्म नहीं आती? तुम

मेरा व्यर्थ ही अपमान करते हो, इसका फल अच्छा न होगा। मैं किसी मर्द को तुम्हारे पैरों की धूल के बराबर भी नहीं समझती, उस अमाने से हतर की क्या हकीकत है। तुम मुझे इतना नीच समझते हो ?

श्याम—नहीं मैं तुम्हें इतना नीच नहीं समझता मगर वेसमझ जरूर समझता हूँ। तुम्हें हम बदमाश को कभी सुँह न लगाना चाहिए था। अब तो तुम्हें मालूम हो गया कि वह छटा हुआ शोहदा है, या अब भी कुछ शक है ?

देवी—मैं उसे कल हा निकाल दूँगी।

सुशीली लेटे, पर चित्त अर्थात् था। वह दिन-भर दरवार में रहते थे। क्या जान सकते थे कि उनके पीछे देवी क्या किया करती है। वह यह जानते थे कि देवी पतिव्रता है, पर यह भी जानते थे कि अपनी उरि दियान का सुदरियों को मरज होता है। देवी जरूर घन टन धर सिटकी पर खड़ी होती है, और महल के शाहदे इसको देख-देखकर मन में न जाने क्या क्या कल्पना करत होंगे। इस व्यापार को बंद करना उन्हें अपने कर्तव्य से बाहर मालूम होता था। शोहदे बरीबरण की जला में विदुम होते हैं। ईश्वर न भरे, इन बदमाशों की निगाह किसी नले घर की बट्ट बरी पर पडे। एनसे कैर पिंड तुआऊ ?

शुभ सोपने के बाद अंत में उन्होंने यह मकान छोड़ देने का निश्चय किया। इसके सिवा उन्हें दूसरा उपाय न मूना। देवा से बोले—इहो, ना यह पर छोड़ दूँ। एन रोहदो के बाध में रहने से काइल विगड़ने का मय है। देवा ने आपत्ति के नाब से कहा—कैनी तु-हारी इच्छा।

श्याम—आपिर तुम्ही बोर्न क्याय बतानो।

देवा—मैं कौन-सा उपाय बताने, और किस बात का इरादा ? तुम्हें तो पर जानने का कोई मकान नहीं न मूना होता। यह इरादा नहीं,

को लाख शोइदे हों, तो क्या। कुत्तों के भूकने के भय से कोई अपना मकान छोड़ देता है।

श्याम—कभी-कभी कुत्ते काट भी तो लेते हैं।

देवी ने इसका कोई जवाब न दिया। और, तर्क करने से पति की दुश्चिन्ताओं के बढ़ जाने का भय था। यह राहकी तो है ही, न-जाने उसका क्या आशय समझ बैठें।

तीसरे ही दिन श्याम बाबू ने वह मकान छोड़ दिया।

(४)

इस नए मकान में आने के एक सप्ताह पीछे एक दिन सुन्दर पिए में पट्टी बांधे, लाठी टेकता हुआ आया, और आवाज दी। देवी उसका आवाज पहचान गई, पर उसे दुतकारा नहीं। जाकर किड़ाड़ जोल दिए। पुराने वर के समाचार जानने के लिये उसका चित्त लाज्यावित हो रहा था। सुन्दर ने अदर आकर कहा—सरकार, जब से आपने वह मकान छोड़ दिया, कपम ले लीजिए, जो उधर एक बार भी गया हूँ। उस पर जो देखकर रोना आने लगता है। मेरा भी जो चाइता है कि इसी मालके में आ जाऊँ। पागलों की तरह इधर-उधर मारा फिटा करता हूँ सरकार, किसी काम में भी नहीं लगता। अब, दर पड़ी जाए ही का बाद आना रहती है। इतने तितनी परवरिम करती थीं उतनी अब जौन करेगा। इ मकान को बहुत छोटा है।

देवी—तुम्हारे ही कारण तो वह मकान छोड़ना पड़ा।

सुन्दर—मेरे कारण ! मुझसे जौन भी खता हुई सरकार !

देवी—तुम्हीं तो तागे पर राजा के साथ पैड नेर पीठ बने आ रहे। ऐसे आदमी पर आइसी जो यक होता ही है।

सुन्दर—अरे सरकार, उस दिन का बात कुछ न पूजिए। एरा निया

Exp. and Receipt *Bekeeser*
 काठन *B. M. S. 42* 1944

को एक वकील साहब से मिलने जाना था। वह छावनी में रहते हैं।
 मुझे भी साथ बिठा लिया। उनका साईस कहीं गया हुआ था। मारे
 लिहाज के आपके तांगे के आगे न निकालते थे। सरकार उसे सोहदा
 कहती है। उसका-सा भला आदमी महज्जे भर में नहीं है। पाँचों उखत
 की नमाज पढ़ता है हज़ूर, तीसों रोजे रखता है। घर में बीबी-बच्चे
 सभी मौजूद हैं। क्या मजाल कि किसी पर बदनिगाह हो।

देवी—खैर होगा, तुम्हारे सिर में पट्टी क्यों बँधी है ?

मुन्तू—इसका माजरा न पूछिए हज़ूर। आपकी जुराई करते किसी
 को देखता हूँ, तो बदन में भाग लग जाती है। दरवाजे पर जो दलवाई
 रहता न था, कहने लगा, मेरे कुछ पैसे बाबूजी पर आते हैं। मैंने कहा,
 वह ऐसे आदमी नहीं हैं कि तुम्हारे पैसे हजम कर जात। धम, धूर,
 इसी बात पर तकरार हो गई। मैं तो दुकान के नीचे नापी जा
 रहा था। वह ऊपर से कूदकर आया, धीरे मुझे उधेल दिया। मैं देकर
 झड़ा था, चारों साने चित सडक पर गिर पडा। चोट तो आई, मगर
 मैंने भी दुकान के सामने बधा को इतनी गारियाँ सुनाई कि बदहा
 करते होंगे। अब घाव अच्छा हो रहा है हज़ूर।

देवी - राम ! राम ! नाहक लडाईं लेने गए। साथी ली बात नो जा।
 यह देते, तुम्हारे पैसे आते हैं तो जाकर माँग लाओ। हैं ली नरर हा
 में, किसी दूसरे देरा तो नही जाग गए।

मुन्तू—हज़ूर, आपकी जुराई सुनके नहीं रहा जाता फिर नहे -ह
 अपने घर का लाट हा क्यों न हो, मिड पड़ूंगा। वह नररन नो,
 ता अपने घर का होगा। वहाँ जिन बयचा दिवा जान र।

देवी—वह घर में बना कोई आया कि नही ?

मुन्तू—कई आदमा देखने जाए हूर, न र ररा कर र ह मुन्तू

हैं, वहाँ अब दुपटा कौन रड सकता है ? इन लोगों ने उन लोगों को मडका दिया। रत्ना मियाँ तो हज़ूर उन्नी दिन से पाना-पीना उड रहे हैं। बिटिया को याद कर-करके रोया करते हैं। हज़ूर को हम गरीबों को याद काहे को आती होगी ?

देवी—याद क्यों नहीं आती ? क्या मैं प्रादनी नहीं हूँ। जानकर तब पान टूटने पर दो चार दिन चाग नहीं जाते। यह पै। ओ, इत पानार मे उकर ग लो। भूये होंगे।

सुनु—हज़ूर की दुआ से पाने की तगी नहीं है। प्रादनी का दिन देना जाता है हज़ूर, पै गों की कौन जान है। आपका दिया तो उ। ड। है। हज़ूर का मिताज ऐसा है कि प्रादनी पाना कीडी का गुआर ड। जाता है। तो अब चलेगा हज़ूर, प डू गी आने होंगे। कहेंगे, यह मे पान यहाँ फिर ग पहुँचा।

देवी—अनी उनके आने में उडी देर है।

सुनु—बेडो, एड बात तो नुडा ही जाता था। रत्ना मियाँ न बिटिया के डिने ने बिडीने दिए थे। बातों में ऐसा नुड गया कि इनके सुन ही न रही। कहा है बिटिया ?

देवी—अनी तो मरमे म नहीं ब डें। नगर हुने बिडीने उ। की क्या उदरन थी ? अ। रत्ना ने तो नगर डी कर दिया। मे। ना पा, तो दा चर य न उ बिडीने नेउ देते। अकरी नन ड। म। अ न ही न होगी। कुड मिठाका ३० २० द। ए। से अ न उ बिडीने नहीं है।

देवी—नहीं, इनको लौटा ले जाओ। इतने खिलौने लेकर वह क्या करगी ? मैं एक मेम रखे लेती हूँ।

मुन्तू—हज़ूर, रजा मियाँ को बड़ा रज होगा। मुझे तो जीता ही न छोड़ेंगे। बड़े ही मुहब्बती आदमी हैं हज़ूर। बीबी दो-चार दिन के लिये मैंके चली जाती है, तो वेचैन हो जाते हैं।

सहसा शारदा पाठशाला से आ गई, और खिलौने देखते ही उन पर दूट पड़ी। देवी ने डाँटकर कहा—क्या करती है, क्या करती है ! मेम ले ल, धार सब लेकर क्या करेगी ?

शारदा— मैं तो सब लूगी। मेम को मोटर पर बैठा कर दौड़ाऊँगी। बुत्ता पीछे पीछे दौड़ेगा। इन परतनो मे मुडिया के पाने पाऊँगा। धरौं स थाए हैं अम्मा ! बता दो।

देवी—वहाँ से नहीं जाए, मेने देखने को मँगवाए व। तु इनमें न जाई एक ले ले।

शारदा— मैं सब लूगी, मेरी अम्मा न, सब ले लाजिए। जेन टारा है अम्मा ?

देवी— मुन्तू, तुम खिलौने लेकर जाओ। एक मेम रहने दो।

शारदा— कहाँ से लाए हो मुन्तू, बता दो ?

मुन्तू— तुम्हारे राजा नेपा ने तुम्हारे लिये भेजे है।

शारदा— राजा-नेपा ने भेजे हैं। जाओ ! (नाचकर राजा नेपा इत जगड़ है। कउ अरती लहेरियाँ को दिव जाँगा। जिना क सब मेम खिलौने ल निकलेंगे।

देवी— अम्मा, मुन्तू तुम सब लाओ। रजा मियाँ ने कह देना हैर परा खिलौने न भेजे।

मुन्तू— अम्मा, जे देरा ने खिलौने लाए— इ सब, नर जि न

रख दूँ, बाबूजी देखेंगे, तो बिगड़ेंगे। कहेंगे, राजा मियाँ के खिलौने क्यों छिपे। तोड़ ताड़ कर फेंक देंगे। भूल कर भी उनसे खिलौनों की चरचा न करना।

शारदा—हाँ अम्मा, रख दो। बाबूजी तोड़ देंगे।

देवी—उनसे कभी मत कहना कि राजा भैया ने खिलौने भेजे हैं नहीं तो बाबूजी राजा-भैया को मारेंगे, और तुम्हारे कान भी काट लेंगे। कहेंगे, लउकी भिखमगी है, सबसे खिलौने माँगती फिरती है।

शारदा—मैं उनसे कुछ न कहूँगी अम्मा। रख दो सब खिलौने।

इतने में गजू श्यामकिशोर भी दफ्तर से आ गए। भीड़ें चढ़ी हुई थीं। आते-ही-आते बोले—वह शैतान मुन्नु इस मइखले में भी आने लगा। मैंने आज उसे देखा। क्या यहाँ भी आया था ?

देवी ने टिचकिचाते हुए कहा—हाँ, आया तो था।

श्याम—और तुमने आने दिया। मैंने मना न किया था कि उस कभी घर दर कुदम न रखने देना ?

देवी—आकर द्वार खटखटाने लगा, तो गया करती।

श्याम—उसके साथ वह शोइदा भी रहा होगा ?

देवी—उसके साथ और कोई नहीं था।

श्याम—तुमने आज भी न कहा होगा वहाँ मत आया कर ?

देवी—मुझे तो इसका क्या लज न रहा। और, अब यह वहाँ गया करने आवेगा।

श्याम—जो करने आज आवेगा वा, वहीं करने कि आवेगा। उन नेर मुँह में काठिल लगाने पर तुम्ही दुई हो।

देवी ने खोब से पेंड कर कहा—मुझे तुम पेरी खटखटाने वाले न किया हो, पारक गए। तुम्हें पेसी बनें मुँह से निकालने धन भी नहीं

आती। एक बार पहले भी तुमने कुछ ऐसी ही बातें कही थीं। आज फिर तुम वही बात कर रहे हो। अगर तीसरी बार ये शब्द मैंने सुने, तो नतीजा बुरा होगा, इतना कहे देती हूँ। तुमने मुझे कोई वेश्या समझ लिया है!

श्याम—मैं नहीं चाहता कि वह मेरे घर आवे।

देवी—तो मना क्यों नहीं कर देते? मैं तुम्हें रोकती हूँ।

श्याम—तुम क्यों नहीं मना कर देतीं?

देवी—तुम्हें कहते क्या शर्म आती है?

श्याम—मेरा मना करना व्यर्थ है। मेरे मना करने पर भी तुम्हारी दृष्टा पाकर उसका आना-जाना होता रहेगा।

देवी ने ओठे चबाकर कहा—अच्छा अगर यह प्राता ही रहे, तो इससे क्या हानि है? भेदतर सभी घरों में आया जाया करते हैं।

श्याम—अगर मैंने मुन्तू को कभी अपने द्वार पर फिर देगा, तो तुम्हारी कुशल नहीं, इतना समझाए देता हूँ।

यह कहते हुए श्यामकिशोर नीचे चले गए और देवी स्वन्नित ता खड़ी रह गई। तब उसका हृदय हस अपमान, लॉउन और अद्विष्ट त के आघात से पीड़ित हो उठा। वह फूट फूट कर रोने लगी। उल्ला खलत पड़ी पोट जिस क्षात से लगी, यह यह थी कि मेरे पति तुम्हें इतनी न भय, इतनी निर्दय समझते हैं। जो काम वेश्या भी न करेगी, उल्ला मदेइ मुझ पर कर रहे हैं।

(५)

श्यामकिशोर के आत ही शारदा अपने लिखाने उठाकर नाग... का कि कभी पाएगी तोड़ न... वादे काकर उद... कोखे कगी कि हूँ... का जिवाकर... यह इतना लोच... कि...

आगन में जा गईं। शारदा उसे अपने खिलौने दिखाने के लिये मागुर हो गईं। इस प्रलोभन को वह किसी तरह न रोक सकी। अभी तो पादुकी ऊपर हैं, कौन इतनी जल्दी नीचे आए जाते हैं। तब तक क्या न सहेली को अपने खिलौने दिखा दूँ ? उसने सहेली को पुछा लिया, और दोनों नए खिलौने देखने में इतनी मग्न हो गईं कि यारू श्याम-किशोर के नीचे आने की भी उन्हें खबर न हुई। श्यामकिशोर गिलोने देखाते ही झटकर शारदा के पास जा पहुँचे, और पूछा—तुने ये गिरी। कहा पाए ?

शारदा की मित्रि यथ गई। मारे भय के धरया नीने लगी। उसके मुँह से एक शब्द भी न गिबला।

श्यामकिशोर ने फिर गरज कर पूछा—सहेली क्यों नहीं, तुके किसे ये खिलौने दिए ?

शारदा रोने लगी। तब श्यामकिशोर ने उसे कुम का कर कहा—मत, हम तुके आरेंगे नहीं। तुकव इतना ही पूछे, तुने किस मुँह से खिलौने कहा पाए ?

हलके-से आघात को भुजा दिया, जैसे घातक की तलवार देखकर कोई प्राणी रोग शय्या से उठकर भागे। श्यामकियोर को घोर भयातुर नेत्रों से देखा, पर मुँह से कुछ न बोली। उनका एक एक रोम मौन भाषा में पूछ रहा था—इस प्रश्न का क्या मतलब है ?

श्यामकियोर ने फिर कहा—तुम्हारा जो इच्छा हो, साफ़ साफ़ कह दो। अगर मेरे साथ रहते-रहते तुम्हारा जी ऊब गया हो, तो तुम्हें अन्धकार है। मैं तुम्हें कैद करके नहीं रखना चाहता। मेरे साथ तुम्हें चल कपट करने की जरूरत नहीं। मैं सहर्ष तुम्हें बिदा करने को प्रीति करता हूँ। जब तुमने मन में एक बात निश्चय कर ली, तो मैंने भी निश्चय कर लिया। तुम हृष घर में अथ नहीं रह सकतीं, रहने के योग्य नहीं हो। देवी ने आवाज की सँभाल कर कहा—तुम्हें आजकल क्या हो गया है जो हर पक्ष जहर उगलते रहते हो। अगर सुकन जी ऊब गया है तो गहर दे दो, जला जलाकर क्यों मारते हो ? मेहतर से बातें करना वापस अचर्या न था। जब उसने आकर पुछारा, तो मैंने दूर खड़े दिया। अगर मैं जानती कि जरा सी बात का बतगड हो जायगा, तो

श्याम—जी चाहता है तालू से जवान खींच लें। बातें होने लगीं, इशारताने लगे, तोहफे आने लगे। अब वाली क्या रहा ?
 देवी—वधो वादक घाव पर गमक टिकने हो ? एक कदम आगे न बढ़कर पुछ पा न आयोग ?

श्याम—मैं मूड बदलता हूँ ?
 देवी—हाँ, मूड बदलत हो।
 श्याम—ये सिद्धोने कहा ले जाए ?
 देवी—का कहेना पक ले हो जया। काले तो यदन ने कह रही।

समझ गई, इस वक्त मउ रिगड़े हुए हैं, सर्वनाश के सभी संयोग मिलते जाते हैं। ये निगोडे खिलौने न जाने किस बुरी सारत में आए। मैंने छिप ही क्यों, उसी वक्त लौटा क्यों न रिप ? बात बनाकर जोली—आग लगे, वही खिलौने तोड़फे हो गए ! बच्चों को कोई कैसे रोके, किपी की मानते हैं। कहती रही, मत ले, मगर न मानी, तो मैं क्या करती। हाँ, यह जानती कि इन खिलौनों पर मेरी जान मारी जायगी, तो जबरदस्ती छीन कर फेंक देती।

स्याम—इन्के साथ और कौन कौन सी चीजें आई हैं, भला वाइती हो, तो अभी लाओ।

देवी—जो कुछ आया होगा, इसी वर ही मैं तो दोगा। देप क्यों नहीं लेते ? इतना बडा वर भी तो नहीं है कि दो चार दिा देपन लग जायँ।

स्याम—मुझे इतनी फुरसत नहीं है। वैरियत इसी में है कि मैं चीजें आई हों, लाकर मेरे सामने रख दों। यह तो हा ही नहीं सकता कि बडकी के लिये खिलौने आयेँ और तुम्हारे लिय छोड़े सोमान न आवे। तुम भरी गंगा में जमम लाओ, तो भी मुझे विश्वास न जायगा।

देवी—तो वर मे देप क्यों नहीं लेते ?

स्याम—किंगोर न बूँसा तान कर कहा—कइ दिया, मुझे फुरसत नहीं है। सोने से सारी चीजें लाकर रख दो, नहीं तो इसी वर माया दगा कर मार डालूँगा।

गले पर हाथ रख कर बोले—दया दू गळा ! न दिखनावेगी तू वन चीजों को ?

देवी—जो अरमान हों, पूरे कर लो ।

श्याम—खून पी जाऊँगा ! तूने समझा क्या है ?

देवी—अगर दिल की प्यास बुझती हो, तो पी जाओ ।

श्याम—फिर तो अब मेहतर से बातें न करेगी ? अगर अब ऊनी मुन्तू या अब शोइदे रजा को हथ द्वार पर देखा, तो गळा काट लूँगा ।

यह कह कर दायूजी ने देवी को छोड़ दिया, और बाहर चले गए । लेकिन देवी उसी दशा में बड़ी देर तक पड़ी रही । उसके मन में क्षम समय प्रति-प्रेम, और मर्याद रक्षा का लेश भी न था । उसका जो अरव प्रतिकार के लिये विश्रुत हो रहा था । इस वक्त अगर वह मुनना डि श्यामकिशोर को किसी ने बाजार में जूतों से पीटा, तो फदाचिन्त रह मुश होती । कई दिनों तक पानी से भीगने के बाद, जान यह नौका पाश्च प्रेम की दीवार भूमि पर गिर पड़ी, और मन की रक्षा करवेया भी जोई सापान न रही । अब केवल सकोच और लोक जान का इच्छा ही रानी रह गई है, जो एक झटके में हट सकती है ।

(६)

श्यामकिशोर बाहर चले गए तो शारदा भी धरने लिये निकली । वह भी निकली । दायूजी चिल्लानों को देखकर उठ नहीं सके, अब उसे किसी चिन्ता और किन्तान न था । अब वह क्यों न करती रहे । जो जो दिलीने दिवावे । लक्ष्मण के इस वार तक हठवई का न था । दायूजी की नती हर पर लगी थी । लक्ष्मण के लिये श्यामकी । अब मैं हठवई, लक्ष्मण दिनों और लक्ष्मण

तांता बैचा हुआ था। शारदा को अपनी पुन में किसी बात का ध्यान न रहा। बाळोचित वस्तुकृता से भरी हुई वह खिलौने लिए दौड़ी। पर क्या जानती थी, मृत्यु भी उसी तरह उसके प्राणों का खिलौना खेदने के लिये दौड़ी आ रही है। सामने से एक मोटर आता हुई दिखाई दी। दूसरी ओर से एक बग्गी आ रही थी। शारदा ने चाहा, दौड़कर उस पार निकल जाय। मोटर ने बिगुल बजाया, पर शारदा उसके सामने आ चुकी थी। ट्राइवर ने मोटर को रोकना चाहा, शारदा ने भी बहुत जोर मारा कि सामने से निकल जाय, पर होनहार को कौन टालता! मोटर बाडिका को रींदती हुई थली गई। सड़क पर केवल एक मोम की लोथ पड़ी रह गई। खिलौने ज्यों के-व्यों थे। उनमें से एक भी न दूरा था। खिलौने रह गए, खेलनेवाला चला गया। दोनों में कौन स्थाया है और कौन अधयायी, इसका फैसला कौन करे!

चारों ओर से लोग दौड़ पड़े। अरे! यह तो बाबूजी की लडकी है, जो ऊपरवाले मकान में रहते हैं। लोथ कौन उठाये। एक आदमी ने लपक कर द्वार पर पुकारा—बाबूजी! आगकी लडकी तो सड़क पर नहीं खेळ रही थी? जरा नीचे आ जाइए।

देवी ने डग्वे पर सते डोहर सड़क की ओर देखा, शारदा की आंख बड़ी हुई थी। चील मार कर बेलदारा नीचे दौरी, और सड़क पर आकर बाडिका को गोद में उठा लिया। उसके पैर पर-पर कानि लगे। इस वधवावाद ने स्तमित कर दिया। रोना भी न आया।

मइस्ते के कई आदमी पूछने लगे—बाबूजी कहाँ गए हैं? उनका कैसे पुजारा जाय!

देवी क्या जवान देवी। वह तो संज्ञाज्ञान मी हो गई थी। उड़की की लोथ को गोद में लिए, उड़के एक स नरन बच्चों का निगार

आकाश की ओर ताक रही थी, मानो देवतों से पूछ रही हो—क्या सारी विपत्तियाँ मुझी पर ?

अंधेरा होता जाता था, पर वावूजी का कहीं पता नहीं। कुछ मालूम भी नहीं, वह कहाँ गए हैं। धीरे-धीरे नौ बजे, पर अब तक वावूजी न लौटे। इतनी देर तक वह कभी बाहर न रहते थे। क्या आज ही उन्हें भी गायब होना था। दम भी बज गए। अब देवी रोने लगी। उसे लहकी की मृत्यु का इतना दुःख न था, जितना अपनी असमर्थता का। यह कैसे शत्रु की दाह-क्रिया करेगी ? कौन उसके साथ जायगा ? क्या इतनी रात गए कोई उसके साथ चलने पर तैयार होगा ? अगर कोई न गया, तो क्या उसे अकेले जाना पड़ेगा ? क्या रात-भर लोथ पड़ी रहेगी ?

ज्यों ज्यों सन्नाटा होता जाता था, देवी को भय होता था। पद पठना रहो थी कि मैं शाम ही को क्यों न इसे लेकर चली गईं।

११ बजे थे। सहसा किसी ने द्वार खोला। देवी उठ कर खड़ी हो गईं। समझी वावूजी भा गए। उसका हृदय उमड़ आया और वह रोती हुई बाहर आई। पर आह ! यह वावूजी न थे। वे पुकड़ी के भादनी य जो हय मामले की तहकीकात करने आए थे। ५ बजे की घटना। तहकीकात होने लगी ११ बजे। आविर धानेदार भी तो भादनी है, यह भी तो सन्ध्या समय घूमने फिरने जाता ही है।

घंटे भर तक तहकीकात होती रही। देवी ने देखा, अब सन्ध्या ने काम न चढ़ेगा। धानेदार ने उससे जो कुछ पूछा उनका उत्तर उसने निरलंघ्य भाव से दिया। जरा नी न नारनाई, जरा नी न शिन्धी। धानेदार नी दग रह गया।

यह सबके बयान लिख कर दारोगाजी चले गये तो देवी ने कहा—अब इस मोर्चे का पता लग येने ?

दारोगा—भव तो शायद ही उसका पता लगे ।

देवी—तो उसको कुछ सजा न होगी ?

दारोगा—मजबूरी है । किसी को नम्बर भी तो मालूम नहीं ।

देवी—सरकार इसका कुछ इतजाम नहीं करती ? गरीबों के रुपये इसी तरह कुचले जाते रहेंगे ।

दारोगा—इसका क्या इतजाम हो सकता है ? मोटरें तो रुद रुद हो सकतीं !

देवी—कम से-कम पुलिसवालों को यह तो देपना चाडिए कि शहर में कोई बहुत तेज न चलावे ? मगर आप लोग ऐसा क्यों करने लगे । आपके भफसर भी तो मोटरों पर बैठते हैं । आप उनही मोटरें लेना, तो नौकरी कैसे रहेगी ।

यानेदार लजित होकर चला गया । सब लोग सडक पर पहुँच, वी एक सिपाही ने कहा—मेहरिया बड़ी टनमन दिघात है ।

यानेदार—भजी, इसने तो मेरा नातका बंद कर दिया । किंग गजब का हुसुन पाया है । मगर उसम ले ला, जो मैंने एक बार भी उसकी तरफ निगाह की है । ता करने की दिम्मत ही न पडता था ।

क्या चारा ! मेरा तो घर ही अँधेरा हो गया । अब यहाँ रहने को तो नहीं चाहता ।

मुन्नु—मालकिन तो और भी बेहाल होंगी ।

श्याम—दुआ ही चाहें । मैं तो उसे शाम-सवेरे पिला लिया करता था । माँ तो दिन-भर साथ रहती थी । मैं तो काम-धर्मों में भूठ भी जाऊँगा । वह कदां भूल सकती है । उनको तो मारी जिन्दगी का रोना है ।

पति को मुन्नु से बातें करते सुन कर देवी ने कोठे पर से आँगन ही ओर देखा । मुन्नु को देव कर उसकी आँखों में धेन्रलियार आँसू भर गए । बोली—मुन्नु मैं तो लुट गई !

मुन्नु—दुआ अब सपर कीजिए, राने-बोने से क्या फायदा ?

यही सब अन्धेरे देव कर तो कभी कभी अल्लाह मियाँ हो जालिम कहना पड़ता है । जो बेईमान है, दूसरों का गला काटते फिरते हैं, उनको अल्लाह मियाँ भी उरते हैं । जा सीधे ओर लच्छे है, उन्हीं पर श्राफ्त आती है ।

मुन्नु देर तक देवी को दिलासा देता रहा । श्याम बापू भी उसकी बातों का समर्थन करते जाते थे । जब वह चला गया तो बापू साइब न कहा—आदमी तो कुछ बुरा नहीं मालूम होता ।

देवी ने कहा—मोड़बबती आदमी है । रज न होता, ता यहाँ जों आता ।

देवी ने सन्नदा, इनका दिउ मुन्नु की ओर ये साफ हो गया ।

(८)

पन्द्रह दिन गुजर गए । बापू साइब फिर इतर मान गए । तुम इस बीच में फिर कभी न आया । अब तब ता देवी का दिन पति के जाने करने में कट जाता था । रहित अब उनके चले जान पर अब बार

बार शारदा की याद भाती। प्रायः सारा दिन रोते ही कटता था। मोहरले की दो-चार नीच जाति की औरतें आती थीं, लेकिन देवी का मनमे मन न मिलता था। वे झूठी सहानुभूति दिखा कर देवी से कुछ पेंठना चाहती थीं।

एक दिन कोई चार बजे मुन्नु फिर आया, और चांगन में चढ़ा होकर बोला—मातकिन, मैं हूँ मुन्नु, जरा नीचे आ जाइएगा।

देवी ने ऊपर ही से पूछा—क्या माम है ? कहो तो।

मुन्नु—जरा आइए तो।

देवी नीचे आई, तो मुन्नु ने कहा—रजा मियाँ बाहर पड़े हैं, जोर दूँर से मातमपुरसी करते हैं।

देवी ने कहा—जाकर कह दो, ईश्वर की जो मरजी थी, यह हुई।

रजा दरवाजे ही पर खड़ा था। ये बातें उसने साफ सुनीं। बाहर ही से बोला—खुदा जानता है, जब से यह खबर सुनी है, दिल के दुखे हुए जाते हैं। मैं जरा दिक्की पला गया था। आज हा कोट कर आया हूँ। अगर मेरी मौजूदगी में यह वारदात हुई होती, तो खीर तो क्या कर सकता, भगर मोटरवाले को बिला सजा कल्पे न छोड़ता। वही वह किसी रक्षा ही का मोटर होती। सारा शहर जान डालना। इतने मरहम पुरके छोके बैठ रहे, यह भी कोई बात है। मोटर चलाकर क्या कोई बिला वा जान ले लेगा। फूल ली माहूम दबी को ज़ाहिनो ने नर बाका। हाय ! अब कौन मुझे राजा मेवा कलकर पुत्र देना ? खुदा का पसल उसक बिय दिना त टोकरी नर बिलोमे कादा हूँ। क्या क नजा पा कि यहाँ यह कितन ही गया। तुम, देख यह त बाव ले कलर पदुश' का दे दे। इस खबरमे मुझे भी क प लो ।। खुद न कलर, जो कलर कला नरह का दर न पा कलर न रहेगा। जहे हुंरे कलर न क दे कलर

देते होंगे, रात को नींद उचट जाती होगी, उदर में कमजोरी महसूस होती होगी, दिरु बभराया करता होगा। ये सारी शिष्टायतें इस तामीज से दूर हो जायेंगी। मैंने एक पट्टेचे हुए फकीर से यह तामीज लिखाया है।

शुली तरङ्ग से रजा और मुन्नू उस वक्त तक एक-एक पहाने के द्वार से न टले, जब तक बाबू साठव आते न दिगाई दिण्। स्यामबिहार ने उन दोनों की जाते देख लिया। ऊपर जाकर बड़े गंभीर भाव में बोले—रजा क्या करने आया था ?

देवी—यों ही मातमपुरमी करने आया था। प्रात दिवली से आया है। यह नगर सुाकर दीडा आया था।

स्याम—मदं मदों से मातमपुरमी करते हैं या औरतों से ?

देवी—तुम न भिळे, तो तुम्हा से शोह प्रकट करके चडा गया।

स्याम—इसके यह माने हैं कि जो आदमी मुकस मिठन भा, वह मेरे न रहने पर तुमसे मिठ सकता है। इसमें कोउं दरज नहीं, क्या ?

देवी—मरमे मिठने में बोडे ही ना रही ई।

स्याम—तो रजा का मेरा माळा है या मसुरा ?

देवी—तुम तो जरा-जरा सी बात पर कयमान लगते हो।

अपशब्दों की बौछार और भीषण आक्षेप ! उसके सिर में चक्कर सा आ गया। बैठकर रोने लगी। इस जीवन से तो मौत कहीं अच्छी ! केवल यही शब्द उसके मुँह से निकले।

बाबू साहब गरजकर बोले—यही होगा, मत घबराओ, यही होगा। तुम मरना चाहती हो, तो मुझे भी तुम्हारे अमर होने की आकांक्षा नहीं है। जितनी जल्द तुम्हारे जीवन का अंत हो जाय, उतना ही अच्छा। कुल में कलक तो न लगेगा !

देवी ने सिसकियाँ लेते हुए कहा—क्यों ए.ए. अचला पर इतना अन्याय करते हो ? तुम्हें जरा भी दया नहीं आती !

श्याम—मैं कहता हूँ, चुप रह।

देवी—क्यों चुप रहूँ ? क्या किसी के जवान बदन पर दया ?

श्याम—फिर बोले जाती है। मैं उठकर सिर तोड़ दूँगा।

देवी—क्यों सिर तोड़ दोगे, काँई जबरदस्ती है ?

श्याम—अच्छा तो बुला, दोगे तेरा जौन दिनायती है !

यह कहते हुए बाबू साहब झटकाकर उठे, और देवी का कर-बन्धन धार में लुगा दिए। मगर वह न रोई, न चिंझाई, न जमानत न कुछ शब्द निकाला, बसल अर्ध-न्यून नेत्रों से शक्ति का और नटना रहा, मांगी यह निश्चय करना चाहता थी कि वह क्या देना देना करे।

जब श्यामरिहोर मार पाटकर अलग लड़के हो गए, तो देवी न रहा। दिल के अन्तत अन्तत निकले ही तो कर-नि-बन्धन से शायद यह अचल न मिले।

श्यामरिहोर ने अचल दिया—निर-बन्धन, तब मुझे देना

यह कहते हुए वह नीचे चले गये, भटके के साथ बिनाः सोने, धमाके के साथ बंद किये, और कहीं चले गये ।

अब देवी की आँखों से आँसू की नदी बहने लगी ।

(९)

रात के दस बज गये, पर श्यामकिशोर वर न लौटे । रोते रोते देवी की आँखें सूज आईं । क्रोध में मयूर स्मृतियों का लोप हो जाता है । देवी को ऐसा ज्ञात होता था कि श्यामकिशोर को उसके साथ कभी वेग ही न था । हाँ, कुछ दिनों वह उसके मुँह आस्य जोड़ते रहते थे । लेकिन वह बनाबटी प्रेम था । उसके यौवन का आनंद लूटते ही वह लिये उससे मीठी मीठी प्यार की बातें की जाती थीं । उसे डाँती से जगाया जाता था, उसे कलेजे पर सुटाया जाता था । वह सब दिवादाग का स्वर्ग था । उसे याद ही न आता था कि कभी उससे कदा प्यार किया गया । अब वह रूप नहीं रहा, वह यौवन नहीं रहा, वह नमीना नहीं रही । फिर उसके साथ क्यों न अन्याचार किये जायें । उसने सोचा— कुछ नहीं ! अब इनका दिव्य मुहमे फिर गया है, नहीं तो मरना ही बरासी बात पर यों मुँह पर दूट पड़ते । हाँ न छोड़ें लोडन कया कर मुहमे गडा बुदाना चाहत है । यही बात है ता में मया इन राशिया और इनकी मार जाने के लिए इस वर में पड़ी रहूँ । पर यन ही नहीं रहा, तो मेरे यहाँ रहने की विचार है । मैं न ही न मडा, यह दुगति तो न होगी । इनकी पड़ी इच्छा है तो पड़ी मशी । मैं तो मरक हुआ कि विपदा हो गई ।

इतनी नीच हो गई कि मेहतरों से, जूनेवालों से आशनाई करने लगी। इस भले आदमी को ऐसी बातें मुह से निकालते शर्म भी नहीं आती ! न जाने इनके मन में ऐसी बातें कैसे आती हैं। कुछ नहीं, यह स्वभाव क नीच, दिल के मैले, दर्यायाँ आदमी हैं। नीचों के साथ नीच ही बनना चाहिए। मेरी भूल थी कि इतने दिनों से इनकी बुद्धियाँ महती रही। जहाँ इज्जत नहीं, मर्यादा नहीं, प्रेम नहीं, विश्राम नहीं, वहाँ रहना बेहयाई है। कुछ मैं इनके हाथ बिक तो गई हो नहीं कि यह जो चाहें करं, मारें या काटें, पढ़ी सहा करूँ। सीता जीवी पतिर्या हाता थी, रा राम जैसे पति भी होते थे।

देवी को भय ऐसी शंका होने लगी, कि कहीं श्यामन्शिर आर दा-आत सधगुच उसका गला न दबा दें, या धुरा न भोंक दें। यह मनाय र-पत्रों में ऐसी कई हरजाहियों की अबरें पढ़ चुकी थी। रादर हा न जेता कई घटनाएँ हो चुकी थीं। मार गय के यह धरकरा पला। रहा रदन न प्राणों की सुराल न थी।

देवा न कपों को एक छोटी-सा चुकची बाधा, और सोचने लगा, पहा स जैसे निकलूँ और फिर यही ले निकलकर जाऊँ कहीं। कहा इस पहा... का पता लग जाता तो बटा जग निकलता। यह चुके था भोंक न पहुँचा देता। एक बार मैंके पदुच नर जाता। फिर ता लाला फिर पटक कर रह जायें, नूळ कर ना न जाऊँ। यह ना बरा बाद करें। २५९ वर्षों जोड़ २, मितमें यह नजे से चुकजरे इकू वै। मिन हा तो काट करदकर जना फिर हैं। इनका जेन ता जेता बहा बनाई था। स्वर्ण करमा साहता ता क जा न बयना। देवा देता बर हा रहता था।

देवा न आर बाध क फिर न बहा कर दिव। फिर नू क ल इ कर

ई ऐना आदमी न था, जिस पर वह भरोसा कर सके, जो इस मकद
काम आ सके। था तो बस वही मुन्नु मेहतर। अब उसी के मिलने
उसकी सारी आशायें अबलवित थीं। उसी से मिलकर वह निश्चय
गी, कि कहीं जाय, कैसे रहे, कैसे जाने का थ्रय उसका हराटा न था।
ने भय होता था कि कैसे मैं श्यामकिशोर से वह थरनी जान न बचा
केगी। उसे यहाँ न पाकर वह अवश्य उसके कैसे जायेंगे, और उसे
परदस्ती खींच लावेंगे। वह सारी यातनाएँ, सारे अपमान सहने को
पार थी, केवल श्यामकिशोर की सुरत नहीं देखना चाहती थी। प्रेम
पमानित होकर हृदय में बदल जाता है।

बोडी ही दूर पर घोराराहा था, कई ताँगेवाले खड़े थे। देवी ने एक
का किया और उससे स्टेशन चलने को कहा।

(१०)

देवी ने रात स्टेशन पर काटी। प्रातः काल उसने एक ताँगा फिराए
र किया और परदे में बैठकर चौक जा पहुँची। अभी दुकानें न खुला
थीं। लेकिन पठने से रजा मिर्याँ का पता चल गया। उसकी दुकान पर
एक लौटा भाटू दे रहा था। देवी ने उसे बुलाकर कहा—जाकर रजा
मिर्याँ बुला द कि सारदा की आत्मा तुमसे मिलन पाई है, अभी
थकिए। दस मिनट में रजा और मुन्नु दोनों आ पहुँचे।

देवी ने सजल नेत्रों से रजा—तुम लोगों के पीछे मुझे घर उठना
पडा। बस रात को तुम्हारा मेरा घर जाना नजब हो गया। जो कुछ
होगा, वह फिर कहूँगी। तुमें पही एक घर दिला जो। पर ऐना ही कि
मनु साधु का मेरा पता न मिले। नहीं, वह मुझे जाना न दे ले।

रजा ने मुन्नु का घर देखा, नगीचे रजा ट—देना, कि उ देना
जक था। देना ल बोला—अब फिर मुन्नु फिर रहे, देना न दिला है।

मुन्नु बहुत ठीक कहते हो भैया । ऐसी सरीपजादी को न-जाने किस मुँह से डाँटते हैं । मुझे इतने दिन हज़ूर की गुलामी करते हो गए, कभी एक बात न कही ।

रजा मकान देखने गया, और तागा रजा के घर की तरफ चला ।

देवी के मन में हम समय एक शंका का आभास हुआ—कहीं ये दानों सचमुच शोहदे तो नहीं हैं ? लेकिन कैसे मालूम हो ? यह सत्य है कि देवी ने जीवन-पर्यन्त के लिये स्वामी का परित्याग किया था, पर इतनी ही ढेर में उसे कुछ पश्चात्ताप होने लगा था । वह अकेली एक घर में कैसे रहेगी, वैठी वैठी क्या करेगी, यह कुछ उसकी समझ में न आता था । उसने दिल में कहा—क्यों न घर लौट चूँ ? ईश्वर करे, यह अभी घर न आए हों । मुन्नु न बोली—तुम जरा दौड़कर देखो ता, बापूजी घर आए कि नहीं ।

मुन्नु—भाप चलकर नाराम से बैठें, मैं देखे आता हूँ ।

देवा—मैं अन्दर न जाऊँगी ।

मुन्नु—बुदा जी कसम खाके कहता हूँ, घर बिल्कुल साफ़ी है । भाप हाजिरी पर शक़ करती है । हम वह लोग हैं कि भापका दुश्मन पावें ता आग में झूड़ पड़ें ।

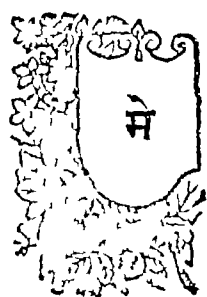
देवी इन्से से उतर-तर अदर चली गई । चिडिया एक बार पकड़ जात पर जी फड़फड़ाई, किन्तु परो में लासा लगे होने के कारण उड़ न सका, और शिकारा ने उसे अपनी मोती में रख लिया । वह अनामिन क्या फिर कभी आराम में डेगी ? क्या फिर उसे उड़ने पर खेदना मिला है ?

होती थी, उसके साथ तूने गड जुड़ित व्यवहार किया। चाँहूँ, तो तुम
अदालत में घसीटकर इस पाप का दंड दे सकत है। अगर एसा
चाहदा ! इसका फल तुझे ईश्वर देंगे।

इमानदारीतः पुनः पाप नीचे उतरे, न किसी ल कुल हटा न सुना
गए तुझे उड दिण, ओर वंगा तड ओ ओर वडे।

कजाकी

(१)



री बाल-स्मृतियों में 'कजाकी' एक न मिटनेवाला व्यक्ति है। आज चाळीस साल गुजर गए, लेकिन कजाकी की मूर्ति अभी तक आँसों के सामने नाच रही है। मैं उन दिनों अपने पिता के साथ आजमगढ की एक तहसील में था। कजाकी जाति का पाली था, बड़ा ही हँसमुख, बड़ा ही साहसी, बड़ा ही जिंदा-दिल। वह रोज गान

को टाक का घेला लेकर आता, रात-भर रहता, और सबेरे टाक लेकर चला जाता। शाम को फिर उपर से टाक लेकर आ जाता। मैं दिन भर एक उद्विग्न दशा में उसकी राह देखा करता, ज्यों ही चार बजते, व्याकुल होकर, सड़क पर आकर, खड़ा हो जाता, और थोड़ी देर में अपना कंधे पर बटम रखके, उसकी कुशुनी बनाता, दूर से दौड़ता हुआ जाता दिखलाई देता। वह हाँवले रंग का, गठीला, लदा जवान था। शरीर साचे में ऐसा टला हुआ कि चतुर मूर्तिज्ञान भी उसमें कोई शोष न निहाल सकता। उसकी छोटी-छोटी सूँठें उनके लुडौल चेहरे पर खुन ही खुनी मालूम होती थीं। मुझे देखकर वह धीरे-धीरे दौड़ने लगता, उसकी कुशुनी और जोर से धमके लगती, और मेरे हृदय में और जोर से लुशी की धड़कन होने लगती। रफ़्तार से मैं भी दौड़ने लगता और एक जगह से कजाकी का दशा नैसर्गिक सन बन जाता। वह खानपान भी अनिलापनों का स्वर्ग था। स्वर्ग के निवृत्तियों को ही

त्याज्य हो जाती थी। लेकिन वह आवाज सुनते ही मैं उसकी तरफ जोर से दौड़ा। हाँ, वह कजाकी ही था। उसे देखते ही मेरी विकलता क्रोध में बदल गई। मैं उसे मारने लगा, फिर मान करके अलग खड़ा हो गया।

कजाकी ने हँसकर कहा—मारोगे, तो मैं एक चीज लाया हूँ, वह न दूँगा।

मैंने साइस करके कहा—जाओ, मत देना, मैं लूँगा ही नहीं।

कजाकी—अभी दिना हूँ तो दौड़कर गोद में बठा लोने।

मैंने पिगलकर कहा—अच्छा, दिखा दो।

कजाकी—तो आकर मेरे कंधे पर बैठ जाओ, भाग चढ़ूँ। धाज बहुत देर हो गई। बाबूजी विगड रहे होंगे।

मैंने धकड कर कहा—पहले दिखा दो।

मेरी विजय हुई। अगर कजाकी को देर का डर न होता, और वह एक मिनिट भी आर रुक सकता, तो शायद पाला पलट जाता। उसने साईं धाज दिखाई, जिते वह एक हाथ से छातो ल चिरटाए हुए था, तथा लुँए था, धीर दो आँखें चमक रही थी।

घर में वह केवल दो बार, घटे घटे-भर के लिये, भोजन करने आते थे, बाकी सारे दिन दफ्तर में लिखा करते थे। उन्होंने दार-दार एक सह-कारी के लिये अफसरो से विनय की थी, पर इसका कुछ असर न हुआ था। यहाँ तक कि तातील के दिन भी घावूजी दफ्तर ही में रहते थे। केवल माताजी उनका क्रोध शांत करना जानती थीं। पर वह दफ्तर में कैसे आतीं। वेचारा कजाकी उमी वक्त मेरे देखते-देखते निकाल दिया गया। उसका बरलम, चपराम और साफा छीन लिया गया, और उसे टाकवाने से निकल जाने का नादिरा हुकूम सुना दिया गया। 'आइ' उस वक्त मेरा ऐसा जी चाहता था कि मेरे पास सोने की लड़ा होती, तो कजाकी को दे देता, और घावूजी को दिया देता कि आपके निकाल देने से कजाकी का पाल भी बाँका नहीं हुआ। किसी योद्धा को अपनी तलवार पर जितना घमंड होता है, उतना ही घमंड कजाकी को चपराम पर था। जब वह चपराम खोलने लगा, तो उसने हाथ काँप रहे थे, और आँखों से आँसू बहर रहे थे। और, इस पारे उपद्रव की जड़ बड़ कोमल वस्तु थी, जो मेरी गोद में सुँह छिपाए ऐसे चैन से बैठी हुई थी, जानो माता की गोद में ही। जब कजाकी चला, तो मैं नी धीरे-धीरे उसके पीछे पीछे चला। मेरे घर के द्वार पर घावूजी ने कहा—'जैया, जब घर जाओ, साँक हो गई।'

मेरे सुवधापसदा धरने परंतु मैंने देग को सारी शक्ति से दबा रखा था।

कजाकी फिर बोला—'जैया, मैं वहीं चार घंटे ही चला जाऊँगा।'

फिर जाऊँगा, और तुम्हें कंधे पर बैठाकर उड़ जाँगा। घावूजी ने मेँकस ले ली है तो क्या इतना मान करने देंगे। तुमको उड़कर न बली जाऊँगा, जैया। चार अगता से कह था, कजाकी इना है। एतेना कहा सुना साँक करे।

आदि से श्रत तक कह सुनाया—श्रम्मा, यह इतना तेज भागता या कि कोई दूसरा होता, तो पकड़ ही न सकता। मन-मन, हवा की तरह, उड़ना चला जाता या। कजाकी पाँच-छ वटे तक इसके पीछे दौड़ता रहा। तब कहीं जाकर बचा मिले। अम्माजी, कजाकी की तरह कोई दुनिया-भर में नहीं दौड़ सकता। इती म तो देर हो गई। इनटिये बाबूजी ने बेचारे को निकाल दिया—चपराम, माफा, बदरम, मय छीन लिया। अब बेचारा क्या करेगा ? भूखों मर जायगा।

श्रम्मा ने पूछा—कहाँ है कजाकी ? जरा धर चुका तो लाओ।

मैंने कहा—बाहर तो मरता है। कहना या, अम्माजी म मेरा उदा-सुना माफ करवा देना।

झुशी की चपरास है। पहले सरकार का नौकर था, अब तुम्हारा नौकर हूँ।

यह कहते-कहते उसकी निगाह टोकरी पर पड़ी, जो वहीं रन्ती थी, बोला—यह आटा कैसा है, भैया ?

मैंने सझुघाते हुए कहा—तुम्हारे ही लिये तो लाया हूँ। तुम भूखे होगे। आज क्या खाया होगा ?

कजाकी की आँखें तो मैं न देख सका, उनके कंधे पर घेरा टुन्ना था, हाँ, उसकी आवाज से मालूम हुआ कि उसका गला भर भाया है। बोला—भैया, क्या रूपी रोठियाँ खाऊँगा ? दाढ़, ननक, प्रो—घोर तो कुछ नहीं है।

पड़ी देर तक इधर-उधर की नैर कराई, गीत सुनाय, आर मुक धर पहुँचाकर चला गया। मेरे द्वार पर आटे की टोकरी भी रख दी।

मैंने घर में कदम रक्खा ही था कि अम्माजी ने बाँटकर कहा—
 क्यों रे चोर, तू आटा कहाँ ले गया था? अब चोरी करना सीखता है!
 पता, किसको आटा दे आया, नहीं तो तेरी खाँड उबेडकर रख देंगी।

मेरी जानी मर गई। अम्मा क्रोध में विडिनी हो जाती थी।
 तिट्ठिट्ठाकर बोला—किसी को तो नहीं दिया।

अम्मा—तूने आटा नहीं निकाला? देख, कितना आटा सार बाँगल
 में बिखरा पड़ा है?

मैं खुब खडा था। वह कितना ही जमकातो थी, धुम मारता थी,
 पर मेरी जवान न खुटती थी। आनवालो विरसि के जय ल प्राण सुन
 रहे थे। जहाँ तक जहने की हिम्मत न पड़ती थी कि बिटला क्यों दा,
 आटा तो द्वार पर रक्खा हुआ है। न उठाने लाते तो जाता था,
 मानो भिषा शक्ति ही लुप्त हो गई था—जाना पैरों न चिन्त जो
 सामथ्य हा जती।

श्रीरत्न ने रोकर कहा—बहूजी, जिस दिन से घाघरे नाम ने आटा लेड़ा गए हैं, उसी दिन से बीमार पड़े हैं। अब, भैया भैया चिया करते हैं। भैया ही में बनका मन चमा रहता है। चौक चौककर “भैया ! भैया !” करते हुए द्वार को ओर डौडते हैं। न जाने उन्हें क्या हो गया है बहूजी। एक दिन सुभासे कुछ कहा-न-बुना, घर में चउ दिर, और एक गली में छिपकर भैया को देखते रहे। जब भैया ने उन्हें देखा लिदा, तो भागे। तुम्हारे पास आते हुए लजाने हैं।

मेने कहा—हाँ, हाँ मैंने उस दिन तुमसे गो बधा मा मनाजा।

शरमा—वर ने कुछ खान पीने को है ?

श्रीरत्न—हाँ बहू मा, तुम्हारे प्राणिरथादस खाने पीने का दुब की है। आज खरैर उठे, ओर लजाय जो ओर खडे गए। बहुत चउ रहा। पाठर मत जाया, उदा लन मायगी, मगर न मजा। लार च जाय च पैर बाँप। लगत है। मगर लजाय में तुलवर ये कत गहरे ली उ लय। वय सुभासे कहा, ले मा, गया का दे जा। उन्हें खतल है चउ चउते लगे हैं। तुमक मर पुंती जाया।

मौरत ने अपना कपडा उठाया और चली गई। अम्मा ने बहुत पुकारा, पर वह न रुकी। शायद अम्माजी उसे सीधा देना चाहती थीं।

अम्मा ने पूछा—पचमुन बहाल हो गया ?

बाबूजी—और क्या झूठे ही पुकार रहा हूँ। मैंने तो पाँचों ही दिन उसकी बहाली की रिपोर्ट की थी।

अम्मा—यह तुम्हने बहुत अच्छा किया।

बाबूजी—।मकी बीमारी की यही दवा है।

(४)

श्राव ढाल में उठा, तो क्या देखता हूँ कि कमाकी लाठी देखा हुआ चला आ रहा है। वह बहुत दुबला हो गया था। माँहून शला था, बूडा हो गया है। हरा-भरा पेट सूत्र कर झूँठ हो गया था। न उसकी ओर दौड़ा, और उसकी कमर से चिमट गया। कमाकी न में गाल चूने, और मुझे उठाकर कंधे पर बैठा करने की चेष्टा करने लगा। पर मैं न उठ सका। तब वह जानबरा की भाँति भूमिपर हाथों और गुदना के बल खड़ा हो गया, और मैं उसकी पाठ पर सवार होकर जाह मान का गार चला। मैं उस वक्त झूठा न समझता था, और शायद कमाकी मुझे न जो ज्यादा लुग था।

बाबूजी ने कहा—कमाकी, तुम बहाल हो गए। अब कमाकी देर न करना।

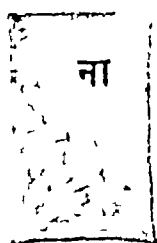
कमाकी रोता हुआ पिताजा के पास पर गिर पड़ा। नगर शायद मेरे नाम में दोनों सुन्न नोगना न दिखाया—मुन्नू मित्रा, तो कमाकी पूछा, कमाकी आया तो मुन्नू शायद गया, और ऐसा गया कि आर तब उसके जाने का दुःख है। मुन्नू नेसा ही पाठी में आया था। अब उरु मैं जाने न देऊँ, वह भी कुछ न खाता था। उसे नील से बहुत हा

रुचि थी, लेकिन जब तक खूब घी न पढा हो, उसे सतोप न होता था। वह मेरे ही साथ सोता भी था, और मेरे ही साथ उठता भी। मफाई तो उसे इतनी पसन्द थी कि मल-मूत्र त्याग करने के लिये घर से बाहर मैदान में निकल जाता था। कुत्तों से उसे चिढ़ गी। कुत्तों को घर में न घुसने देता। कुत्ते को देखते ही थाली से उठ जाता और उसे दौड़ा कर घर से बाहर निकाल देता था।

कजाकी को डाकघराने में छाड़ कर जब मैं खाना खाने गया, तो मुन्तू भा आ बठा। अभी दो चार ही कौर खाए थे कि एक बढा-या भूषरा हुआ आँगन में दिखाई दिया। मुन्तू उसे देखने ही दौड़ा। दूसरे घर में जाकर कुत्ता पृदा हो जाता है। भूषरा कुत्ता वसे जाते देख कर भागा। मुन्तू को जब लौट खाना चाहिण था। मगर वह कुत्ता उसके लिये भयानक का दूत था। मुन्तू को वसे घर से निकाल कर ही सतोप न हुआ। वह उस घर से बाहर मैदान में भी दौजने लगा। मुन्तू को सायद बदाल रदा टि यहाँ मेरी भमलदारी नहीं है। वह उस क्षेत्र में पहुँच गया था, जहाँ नहर का भा उतना ही अधिकार था, जितना मुन्तू का। मुन्तू कुत्तों को भगाते-भगाते कदाचित् अपने बाटुयल पर घसड़ करने लगा था। वह पद न समझता था कि घर में उसका पीठ पर पर के दरवाजा ही नय था। वह किया करता है। भूषरे ने इस मैदान में खाने हा उठ्ट कर मुन्तू को गरदन दया दी। बेचारे मुन्तू के मुँह से आवाज तक न निकला। जब पहालिया ने सोर नचाया, तो मैं दौड़ा। देखा, तो मुन्तू नरा उड़ टै, और भूषरे का कहीं पता नही।

आँसुओं की होली

(१)



मों को रिगाइने की प्रथा न-जाने कब चली थीर कहां
शुरू हुई। कोई इस संसार व्यापी रोग का पता
लगाए तो ऐतिहासिक सवार में अचर्य की प्रतीति
नाम ठाढ़ जाय। पण्डितों का नाम तो श्रीविश्वनाथ
था, पर मित्र लोग मित्रविल कहा करत थे। नाम
का अमर धरित्र पर भी कुछ न-कुछ पड़ जाता है।

विचारें मित्रविल सचमुच ही मित्रविल थे। दफतर जा रहें हैं, मगर
पातामै का इतारमन्द नाचे लटक रहा है। विर पर फेक-फेक है, पर
लम्बी-सी चुटिया पीठे काँठ रही है। अचकन या चहुन सुन्दर है, नाक
केशनेवल, बिलारुई अरुई, मगर तारा नीची हो गई है। न-गाइ इन्
द्वोहारों से क्या चिड़ थी। दिवाली गुनर जाती, पर बड़ नल्लायाम
जोड़ी हाथ में न लेता। श्रीर डोली का दिन ता उनकी भीषण तारा का
का दिन था। तीन दिन बड़ पर से बाहर न निकलत थे। चर पर ना
हाले उपटे पड़ने बैठे रहने थे। चार आग टाढ़ में रहत थे कि कहीं बग
फँस जायें, मगर पर म चुनकर तो काजदाला नही की जाती। एकद्वार
बार फँस भी, मगर विविधा चुनिया कर बदल निकल गए।

वही पुराना पुराना ढङ्ग पसन्द था। बीवा को जब कपका डाट दिया तो उसकी मजाल है कि रङ्ग हाथ से छुण्। विपत्ति यह थी कि सनुराल के लोग भी होली मनाने आनेवाले थे। पुरानी नसब है, बहन अन्दर तो भाई निरन्दर। इन निकन्दरों के आक्रमण से बचने का उन्हें कोई उपाय न सूझता था। मित्र लोग घर में न जा सकते थे, लेकिन निकन्दरों को कान रोक सकता है।

स्री ने आस फाड़कर कहा—“अरे मैया ! क्या सचमुच रंग न पर लाओगे। यह कैसी होती है आया ?”

सिलबिल ने तयोरियाँ घटाकर कहा—“बस तीन एक बार रंग और बात दोहराना मुझे पसन्द नहीं। घर में रंग नहीं आया और कोई नुण्गा। मुझे कपटों पर लाल छीटे देखकर नतजा आता था। हमारे घर में ऐसी ही होली होता है।”

स्री ने फिर मुन्कार कहा—“ता न लागा रङ्ग बङ्ग, मुझे रङ्ग लेना क्या कलना है। जब तुम्हीं रङ्ग न पुजोगे तो मैं कैसे रङ्ग लेती हूँ ?”

सिलबिल ने प्रहारा धोकर कहा—“निकन्दर वही लक्ष्मी का कर्म है।”

“तुम ऊपरवाली छोटी कोठरी में ठिप रहना, मैं ऊपर दूँगी वन्दोंने जुलाब लिया है। बाहर निकलेंगे तो हवा लग जायगी।”

पण्डितजी खिल उठे—“बस-बस, यह सपसे अच्छा है।”

(२)

होली का दिन है। बाहर हाराहर मचा हुआ है। पुराने जमाने में अवीर और गुलाल के सिवा और कोई रङ्ग न खेला जाता था। घर नोले, धरे, काले, सभी रङ्गों का मेल हो गया है, और इस मङ्गलमय वचना आदमी के लिये तो सम्भव नहीं, हों देवता उचें तो बचें। गिर विठ के दोनों साले मुडकले-भर के मर्दों, औरतों, बच्चों, जूटा का बिसाला घने हुए थे। इन्हीं भी कुछ हण्डा रङ्ग धोल रहा था। मिहन्दरी हमके कर रहे थे। बाहर के दीवानमाने के, फर्नी दीवारें यहाँ तक कि तम्बार भी रंग उठी थीं। घर में साँ यही डाढ़ था। मुडकले की नर्तकें मला कर मानने लगी थीं। परनाचा तक रङ्गीन हो गया था।

बड़े साले ने पूछा—‘क्यों री चम्पा, क्या सचमुच इनकी तमीयत अच्छी नहीं, खाना खाने भी न चाए।’

चम्पा ने गिर कुबाकर कहा—“हाँ जेया, रात ही से कुछ पेट में दर्द होने लगा, डाक्टर ने हवा में निकलने को मना कर दिया है।”

चरा देर बाद ठोटे साले ने कहा—‘क्या गजीजी, क्या माई पाइन नीचे नहीं आवेंगे? ऐसी भी क्या बीमारी है। कहीं तो खर जाकर देव चार्क।’

होता है। जितनी देर में लोग ने भोजन किया, उतनी देर में पित्त के तैयार हो गते। उडे साने ने मुद् चम्पा की ऊपर भेगा कि पित्त की थाली ऊपर दे खाने।

मिलिचि ने माली की ओर कुपित नेगी से देख कर उवा—“इ। मर सामने से दटा ले जाय।”

“क्या भाग उपास न करोगे ?”

“कुम्हारी यही इच्छा है तो यही मन्ही।”

यकायक पैरों को छोट पाकर सिलबिल ने सामने देखा तो दोनों साले चले आ रहे हैं। उन्हें देखते ही बिचारे ने मुँह बना लिया, चादर न शरीर ढक लिया, घोर कराहने लगे।

बड़े साले ने कहा—“कहिए, कैसी तयौयन है। थोड़ी-सी चिचड़ी खा लीजिए।”

सिलबिल ने मुँह बनाकर कहा—“अभी तो छूट जाने की इच्छा नहीं है।”

“नहीं, उपवास करना तो दानिकर हागा। चिचड़ी खा लीजिए।”

बेचारे सिलबिल न मन में इन बातों का खूब खोसा कर बिच की भाँति चिचड़ी दण्डक नाचे उठारा। तब ही दो साले चिचड़ी ही भाग्य भगिनीया यो! जब तक सारा बिचारा न खा ले, गर्द, दोनों वहाँ उठे रहे, माना जेल के अंधकार में निःशक्ति न रहें। सही का भाजन करा रहे हों। बेचार का हँस हँस तयवनी सता सता। पचानों के लिए यु० भाग्य ही न रहा।

न कहें तो भी तो काम नहीं चलता। तुम्हीं को पुरा लगेगा। छो-रोज भावेंगे।”

“ईश्वर न करे कि रोग आये, यहाँ तो एक ही दिन में बणिगा पैठ गई।”

याल की सुगन्धमय, तरपतर चीज देवकर सइसा पण्डितजी के सुधारविन्द पर मगुर मुस्मान की लाकी दीउ गई। एक-एक चीज खात ये और घन्ना की सराहने थे—सच बहता हूँ चम्पा, मेरे पेशो वारों कभी नहीं खाई थी। हठपाई माला क्या बनाएगा। जो खाइता दे कुठ इनाम हूँ।

“तुम मुझे बना रहे हो। क्या कहूँ, जैसा बनाने आता दे बना लाई।”

‘नहीं जी, सच कह रहा हूँ। मेरी तो आत्मा तब वृक्ष हो गई। आज मुझे ज्ञान हुआ कि भोजन का सम्बन्ध उदर से इतना नहीं मिलता आत्मा से है। बतलाओ क्या इनाम हूँ?’

“जो माँगू वह दोगे।”

“जैसा, चनेज की कवम खाकर बहता हूँ।”

“न दो तो मेरी शान जाय।”

“कहना तो हूँ नाई श्रम कैने छहूँ। क्या खिला पडी खर हूँ।”

“बस्यो तो माँगती हूँ। मुझे शान साथ शोकी चलने दी।”

पण्डितजी का रङ्ग उड़ गया माँगों का खर शोकी— शोकी चलने हूँ। मैं तो शोकी चेतना ही नहीं। कना नहीं लडा। शोकी चलना होना तो पर मे टिपकर क्यों पैठता।”

मैंने ढोखी नहीं खेले। ढोली ही नहीं, और सभी त्योहार छोड़ दिये। ईश्वर ने शायद मुझे क्रिया की शक्ति नहीं दी। भय बहुत चाइता हूँ कि कोई मुझसे सेवा का कोई काम ले। सुर भागे नहीं पड सकता, उडि पाउते चकने को तैयार हूँ। पर कोई मुझसे काम लेनेवाला भी नहीं। लेकिन आज यह रत्न उलकर तुमसे मुझे उस धिहार की याद दिये। ईश्वर मुझे ऐसी शक्ति दे कि मैं मा में ही नहीं, हम में भी मन दरन मूँ।”

यह कहते हुए आपिलास ने तयतरी से गुलाल निहावा और मन चित पर टिडहर उस प्रणाम किया।

First Class ~~Handwritten~~
 Key Book Book
